हुक्का-पानी

[हास्य-व्यंग्य प्रधान तीस आत्मव्यंजक निबन्धोंका संग्रह]

बेढब बनारसी

कल्याणदास एण्ड ब्रदर्स
ज्ञानवापी, वाराणसी-१

विषय-सूची

हुक्का-पानी

हुक्का-पानी

सिगरेट और बीड़ी हमारे समाजमें आयी। आयी क्या इन्होंने हमारे ऊपर आक्रमण किया। इनका आक्रमण अंग्रेजोंकी भाँति न था कि आये और जो बना ले-देकर चले गये। यह मुसलमानोंकी भाँति आये। यहीं रह गये। और उनकी संतति भी यहींकी हो गयी। पहिले पहल यहाँ तमाखू आया। काली वस्तुएँ भारतवासियोंको प्रिय होती हैं। शायद इसलिये कि हम भी काले हैं। भगवान्का रूप हमने काला बनाया। काले बाल हमारे मनके ऊपर साँपकी भाँति लहराते हैं। विदेशोंमें भले ही रेशमी और शरबती और सुनहले बाल पसन्द आयें, यहाँ तो काले,

पापियोंके हृदयके समान, काजलके समान, प्रेसकी स्याहीके समान, बाल हों तो हृदय उलझता है। आँखें काली हों विषकी तरह, अफीमकी भाँति तब वह खींचती हैं। काले तिलसे ही स्नेहकी धार निकलती है!

इसीलिये तमाखू लोगोंको प्रिय लगी। धीरे-धीरे वह हमारे सामाजिक जीवनका अंग बन गयी। चायके हमलेके पहिले वही हमारे समाजमें खातिरदारीका खेल था और उसके साथ जो कविता थी वह सिगरेट और बीड़ी में तो कहाँ मिल सकती है। चिलममें जब तमाखू रखी जाती है और नारियल या गड़गड़े या फरशीसे शब्दोंकी बौछार करते धुँआ निकलता है तब जान पड़ता है कि कोई वीर रसका कवि अमृत ध्वनि छन्द पढ़ रहा है। जहाँगीरके तम्बाकू पीनेका वर्णन इतिहासकारोंने लिखा है कि उसका तमाखू सेबके खमीरेसे बनता था और प्रथम श्रेणीके गुलाबजलसे साना जाता था। उस तमाखूमें इलायची, केसर, कस्तूरी मिलायी जाती थी और जिस समय उसकी सोने-चाँदीकी गंगा-जमुनी फरशी और सोनेके मुहनालसे धुँआ निकलता था दीवान खासमें सुगन्धिका बादल छा जाता था। अब बीड़ी कैसी भी हो चाहे सौंफी हो या ज़ाफरानी जहाँ कोई पीता है वहाँ बैठना समयकी परीक्षा है। और कितना ही बढ़िया सिगरेट हो। सोबरानी हो या अबदुल्ला किसीका भी धुँआ वैसा ही लगता है जैसा मुँहमें रेड़ीका तेल।

घर-घर तमाखूमें चाहे केसर कस्तूरी न पड़ती हो, सज्जी और शीरा ही पड़ता हो किन्तु उसमें जीको मचलानेवाली गन्ध नहीं होती। खींचकर जब वह धुँआ निकाला जाता है और मुँहसे निकल कर काले-काले छल्लोंमें आकाशमें उठता है तब ऐसा जान पड़ता है कि कृष्णसे मिलनेको यमुना लहराती स्वर्गकी ओर चली जा रही है। या नारियलके जलमें से छनकर धुँआ जाड़ेके प्रभातमें मुँहसे निकलता है तब वही आनन्द मनको आता है जो काजलसे श्याम और मक्खनसे मुलायम

लहराते बालोंको देखकर होता है। केवल मानसिक सुख ही नहीं तमाखूसे मिलता। सामाजिक बन्धन भी उससे दृढ़ होता है। .

गाँवमें तो तमाखूने और भी दौड़ लगायी है। यही चिह्न है जिससे कि यह पता लगता है कि जो बिरादरीसे निकाल दिया गया उसका हुक्का-पानी बन्द। याज्ञवल्क्यने नहीं लिखा या पाराशरने नहीं लिखा, मनुने नहीं लिखा, न किसी विधानसभासे पास हुआ किन्तु विधान बन गया। हुक्काका बड़ा महत्त्व है।

जैसा वनस्पति आनेसे घी का महत्व घट गया, चायसे तुलसीकी महिमा घट गयी, साबुन आनेसे उबटनकी मर्यादा जाती रही इसी प्रकार सिगरेट बीड़ीके प्रचारसे तमाखू पर आघात पहुँचा। सिगरेट-बीड़ीमें वह रस कहाँ। सिगरेटसे कैंसर हो सकता है, बीड़ीसे हृदयकी धड़कन बढ़ सकती है, इनसे जो हानि होती है उसकी सूची डाक्टर कई पृष्ठोंमें बना सकते हैं किन्तु तमाखूका किसी डाक्टरने विरोध नहीं किया। हो सकता है उससे हानि होती हो, हानि तो पानीसे भी होती है किन्तु वह हानि वैसी ही है जैसे प्रेमसे हानि होती है, दयासे, करुणासे और शालीनतासे, शिष्टतासे। सिगरेट और बीड़ीसे अधिक हानि होनेकी आशंका है। केवल भीतरी ही नहीं बाहरी भी। मेरे एक बंगाली प्रोफेसर थे। सुरेन्द्रनाथ बनरजीके सहपाठी होनेके नाते उन्होंने दाढ़ी बढ़ा ली। हाथमें सिगरेट लिये रह मिलटन पढ़ रहे थे। सिगरेटने दाढ़ी उसी प्रकार पकड़ी जैसे पुलिस चोरको। मैं ठीक तो नहीं कह सकता किन्तु मूँछ मुड़वानेकी प्रथा अवश्य ही उस समयसे निकली है जब सिगरेट जलाते समय मूँछोंने अग्निशिखाका आलिंगन किया होगा।

अफवाह

मनुष्यका जीवन आनन्दके लिए है क्योंकि भगवान्‌ने मनुष्यको बनाया है और भगवान्‌का नाम सच्चिदानन्द है। जीवनमें यों तो आनन्द अनेक हैं जैसे घूस लेनेके ढंग अनेक हैं किन्तु तीन आनन्दसे बढ़कर कोई नहीं मिला है अभीतक। यह लिख-कर मैं विज्ञानकी शक्तिकी अवहेलना नहीं कर रहा हूँ। विज्ञानमें अद्भुत शक्ति है। जिस विज्ञान द्वारा हरी-हरी घाससे उजला घी बन सकता है, जिस विज्ञानकी सहायतासे डाका और चोरीकी कठिनाइयाँ दूर हो गयी हैं उसे मैं चुनौती नहीं दे रहा हूँ। सम्भव है कोई नये प्रकारका आनन्द कल निकल आये। किन्तु मैं आजकी

बात कर रहा हूँ। पहला आनन्द तो ब्रह्मका 'साक्षात्कार है। जो कम लोगोंके भाग्यमें होता है। सुनता हूँ आजसे सहस्रों वर्ष पहले भारतमें उन लोगोंको यह आनन्द प्राप्त हो जाता था जो महीनों बिना भोजन किये और बिना जल ग्रहण किये नख और जटा बढ़ाकर हिमालयकी किसी चोटीपर बैठ जाते थे। आजकल भोजन बिना लाखों प्राणी उसी प्रकार जीवनका आनन्द प्राप्त कर लेते हैं। दूसरा आनन्द रसोंका है। साहित्यके रसका आनन्द ब्रह्मानन्द सहोदर है। इसका भी अब अभाव है। जब मानव शोषित हो गया तब उसमें रस कहांसे आ सकता है।

किन्तु तीसरा आनन्द आजकल सभीको प्राप्य है। सरल है। उपदेशकी भाँति बिना मूल्य मिलता है। यह आनन्द उस समय आता है जब हम दो-चार मनुष्य बैठकर दूसरोंकी निन्दा करने लगते हैं। कामधेनुके दूधसे बनी हुई मलाईमें, अथवा नलके हाथकी बनी हुई कढ़ीमें अथवा भीमके हाथसे बनी खिचड़ीमें, नूरजहाँके कोमल करसे बने पुलावमें वह रस नहीं मिल सकता जो दूसरोंके सम्बन्धमें उसके परोक्षमें बैठकर बात करनेमें आता है।

सन्ध्याका समय है, चाहे मलयागिरिका सुगन्धिसे सना समीर बहता हो अथवा राजपूतानेसे चली वियोगिनी क्षत्राणियोंकी उसासोंसे सन्तप्त शरीरको झुलसानेवाला पवन बहता हो, चार-छ आदमी बैठ जाते हैं। अमावस चन्दके चरित्र की चर्चा होने लगती है। अमावस चन्द निहायत निकम्मे आदमी हैं। जिन लोगोंने उनकी परछाहीं नहीं देखी, उन्होंने उन्हें घूस लेते देखा है। जो लोग उन्हें उतना ही जानते हैं जितना अर्जुन इब्राहीम लोदीको जानते थे उन्होंने उन्हें चोरी-चोरी जानीवाकरके गिलास समाप्त करते देखा है।

चर्चा अमावस चन्दतक ही नहीं रह जाती। यदि उन्हींतक समाप्त हो जाय तो बैठक सोखतेके समान नीरस हो जाती है। उस सीमातक लोग पहुँच जाय जिसके आगे राह नहीं है। अमावस चन्दसे ढोलकप्रसाद, ढोलकप्रसादसे लोटनराम और इसी प्रकार जितने परिचित लोग हैं सबके बारेमें लोग चर्चा चलाते हैं। प्रशंसा भी होती है। किन्तु निंदाके परिमाणमें प्रशंसाकी मात्रा उतनी ही रहती है जितनी बघारमें हींग। और सच पूछिये तो प्रशंसामें आनन्द नहीं आता। दर्द में जो मजा है वह शांतिमें कहाँ। ऐसा न होता तो शंकर गरल क्यों पीते। किसीकी निन्दा करनेमें जो अलौकिक सुख मिलता है उसे सहस-सारदा-सेस भी नहीं कह सकते।

अपने मित्रोंके सम्बन्धमें तो कुछ हम जानते भी हैं। हमें अधिकार है कहनेका। उसके पिताके सम्बन्धमें कहनेका, उनकी स्त्रीके विषयमें बतियानेका, उसकी लड़कीपर टीका-टिप्पणी करनेका। किन्तु यह निन्दा सीमित रहती है। आनन्द सदा असीममें मिलता है। असीम आकाश जब हम देखते हैं कल्पनाको भी डैने लग जाते हैं, असीममें आकर्षण है इसीलिए उसी ओर सब झुकते हैं। इसलिए उन लोगोंके सम्बन्धमें, जिन्हें हम नहीं जानते और जिनकी संख्या अपरिमित है, हमें आलोचना करने में विचित्र मिठास मिलती है। उनके सम्बन्धमें जब दृढ़तासे हम कहते हैं कि उनका चरित्र पतित है तब यदि कोई विरोध करता है तो हम सहन नहीं कर सकते। यद्यपि हमने उनका चित्र देखा है, केवल अखबारमें, फिर भी हमें ऐसी दृष्टि मिली रहती है कि हम उनकी राजनीति, उनका आचरण उनकी आय सब अच्छी तरह जानते हैं।

स्त्रियां तो देशकी गौरव हैं। उनके सम्बन्धमें सभीको चिन्ता और चेतना होना आवश्यक है। उनसे तथा उनके घरवालोंसे अधिक परवाह

हमें उनके लिए हो जाती है। उनके प्रति हम इतने जागरूक हो जाते हैं कि उनकी चाल-ढाल, वेशभूषा, बनाव-सिंगारपर 'पैनी' आलोचना करना अपना जन्मसिद्ध, धर्मसिद्ध और युगसिद्ध अधिकार समझते हैं। उनकी साड़ीके रङ्गमें और माँगकी बनावटमें हम उसी प्रकार अर्थ निकालते हैं जिस प्रकार पुरातत्वके पारखी किसी पुराने खंडहरके प्रत्येक ठीकरेमें देशके इतिहासकी एक-एक दिनकी घटना अंकित देखते हैं। अन्तर केवल इतना होता है कि यदि किसी ईंटको देखकर पुरातत्वका विद्वान कहता है कि इसकी रेखाओंमें कनिष्कका चरण झलकता है और दूसरा कहता है नहीं, यह हुविष्कका है तो सत्य चाहे जो हो, दोनोंसे ईंटका गौरव ही बढ़ता है। किन्तु जब हम किसी महिलाके रूमालको आलोचनाकी कसौटी पर कसते हैं अथवा उसकी चूड़ियोंपर कला पारखी बनकर अपनी 'एक्सपर्ट' राय देकर मल्लिनाथकी भाँति अर्थगौरवकी अभिव्यक्ति करते हैं तब उस महिलाके चरित्रसे हम उसी भाँति खेलते हैं जिस प्रकार चूहेसे बिल्ली खेलती है।

और जो विचारका धागा हमारी कल्पनाके मिलसे निकलता है उसे यदि दूसरे भी प्रदर्शित करने लगते हैं तब तो हमें वैसी ही प्रसन्नता होती है जैसी मेघनादको लक्ष्मणके बेहोश होनेपर हुई होगी।

दूसरोंके सम्बन्धमें काल्पनिक असत्य बातोंके प्रचार करनेमें इस प्रकार जो आनन्द आता है वह मीठा भी है, मादक भी है और मनोरंजक भी है। बहुतोंका यह मानसिक भोजन है जिससे शरीरपर बहुत स्वस्थ प्रभाव पड़ता है। बड़े-बड़े विद्वानों और पंडितोंसे लेकर कालेज और स्कूलके विद्यार्थियोंतक यह इसी प्रकार प्रसारित है जैसे क्षयके कीटाणु हमारे देशमें। दोनों ही वन्दनीय और अभिनन्दनीय हैं।

बद अच्छा बदनाम बुरा

शेक्सपियरने बहुत दिन हुए कहा था कि नाममें क्या रखा है। गुलाबको चाहे जिस नामसे पुकारिये सुगंध तो वैसी मीठी होगी। किन्तु वह नहीं जानते थे कि कुछ मनचले लोगोंने उन्हींके नाटकोंको दूसरे लेखकके नामसे कहना आरंभ कर दिया तो तहलका मच गया। तुलसी-दासने तो नामकी अपार महिमा गायी है और कह दिया कि 'कहउं कहा लगि नाम बड़ाई, राम न सकंहि नाम गुणगाई।' इसलिये संसारमें जो कुछ किया जाय वह नामके ही लिये किया जाय तो इसमें आश्चर्य क्या हो सकता है।

किसीसे छिपा नहीं है कि जब कोई पुण्य कार्य करता है तब यह तो निश्चित नहीं रहता कि बैकुंठमें उसके लिये स्थान सुरक्षित हो गया किन्तु उसका नाम अखबारोंमें छपेगा, लोगोंकी

ज़बानपर उसका नाम अनेक बार आयेगा यह निश्चित है। और उस व्यक्तिको स्वर्गका सुख यहीं मिल जाता है। जितने अधिक पत्रोंमें उसका नाम छपता है, जितने मोटे टाईपमें छपता है, जितनी भाषाओंमें छपता है उतना ही अधिक उसके आनंदका विस्तार होता है।

नामका महत्व इतना हो गया कि लोग असलियत भूल गये। आजकल जब सभी ओर वास्तविकताकी ओर लोगोंका ध्यान कम जाने लगा है। लोग नामकी ही महत्ता समझने लगे हैं। यदि किसीका नाम हो गया तो वह उस पर्देके भीतर जो चाहे वह कर सकता है। और यदि किसीकी कुख्याति हो गयी तो वह चाहे कितना ही अच्छा हो सब लोग उसका नाम सुनकर नाक-भौं चढ़ायेंगे।

मैं आपको एक उदाहरणसे स्पष्ट कर दूँगा और आप मान भी जायेंगे कि जो मैं कह रहा हूँ उसमें कहाँ तक सचाई है। गदहेको लीजिये। किसी अतीत कालमें किसीने गदहेमें कोई मूर्खता देखी होगी। तबसे वह मूर्खताका प्रतीक बन गया। आज तक वह बेचारा मूर्खताका यह बोझ ढोता चला आ रहा है। और अध्यापकोंको जब अपने विद्यार्थियोंमें कोई त्रुटि दीख पड़ती है तब यही बेचारा स्मरण किया जाता है। मालिक जब अपने चाकरमें कोई कमी पाता है तब इसको याद करता है। आप स्वयं देखते होंगे कि यह कितना सीधा पशु है। सारे गंदे कपड़े साफ करनेके लिये ढोता है। जितना बोझ चाहिये इसपर लादिये। उस कपड़ेके बोझपर स्वयं धोबी भी बैठ जाता है। किन्तु यह बोलता नहीं। किसी महान तपस्वी, निष्काम साधककी भाँति अपने लक्ष्यकी ओर चला जाता है। कभी कभी तो यह ध्यानमें आता है कि यह कोई पहले जन्मके योगी हैं जो स्वर्गके किसी कर्मचारी की असावधानीसे पशुके रूपमें जा पड़े। इसके पैर बाँध दिये जाते हैं, डंडेका इस पर उसी प्रकार प्रयोग होता है जैसे छत पीटी जाती है

किन्तु वह कितना सहनशील होता है, संतोषी होता है। विनय, मर्यादा की सीमासे बाहर नहीं जाता। फिर भी उसकी प्रशंसा नहीं होती। किसी कालेज या स्कूलकी डिसिपलिन यदि ठीक हो वहाँके विद्यार्थी आज्ञा पालनमें आदर्श हों तो यह कहते नहीं सुना गया कि अमुक विद्यालयके विद्यार्थी गदहेके समान हैं। गदहा बेचारा इतना बदनाम हो गया है कि ऐसा अनेक गुण संपन्न प्राणी सदा अवगुणोंके लिये ही याद किया जाता है। उसकी बुद्धि देखिये कि यदि खेतमें चरनेके लिये छोड़ दिया जाय तो वह इस ढंगसे चलता है कि कमसे कम यात्रा उसे करनी पड़े। किसी त्रिभुजकी दो भुजाएँ तीसरीसे बड़ी होती हैं, उसीने खोज निकाला है। ज्यामितिका इतना बड़ा पंडित फिर भी वह बेवकूफ है केवल इसलिये कि कभी कोई इससे रंज हो गया होगा।

यही हाल उल्लूका भी है। दूसरा कोई रात भर जागता तो जितेन्द्रिय कहा जाता। कौवा ऐसे निकृष्ट पक्षीका संहार करता है। रातको पहरा देता है। पुलिसका काम करता है। किन्तु मनहूस और मूर्ख समझा जाता है। कौवा धूर्त है, प्रातःकाल पुण्यात्मा लोगोंसे खानेके लिये ग्रास पाता है। यह है संसारका ढंग।

कुत्तेमें न जाने कहाँसे सब गुण आ गये। जिसके काटनेसे आदमी पागल तक हो सकताहै किन्तु उसकी सब जगह पूछ है। शायद इसीलिये कि वह युधिष्ठिरका साथी था। उसका भोजन निकृष्ट, उसकी नैतिकता में संदेह है फिर भी वह लोगोंकी गोदका खिलौना बना हुआ है। यह है नामकी महिमा, यह है नामका प्रभाव। बिलाई चूहे खाती है किन्तु उसको अपने बर्तनमें पानी या दूध पिला दिया जायगा किन्तु गदहे को जो पूर्ण रूपसे शाकाहारी—वेजिटेरियन है कोई अपने बरतनमें पानी पिलानेके लिए तैयार नहीं है। क्योंकि यह बदनाम है। उसके नाम पर कलंक लगा है।

यह शिकायत की जा सकती कि पशुओं और गदहेका ही उदाहरण क्यों दिया जाता है। कारण यह है कि संसारके सभी महान् विचारक कह रहे हैं कि प्रकृतिकी ओर सबको लौटना चाहिये। इस युगकी यही पुकार है। हम सबको अपना जीवन पशु-पक्षियोंके अनुसार कीड़े-मकोड़ेके अनुसार भुनगे-पतंगोंके अनुसार बनाना चाहिये। इसलिये ऐसे प्राणियोंका उदाहरण दिया जा रहा है जो प्रकृतिके बृहद् पुत्र हैं। यों तो परमात्मा पूर्ण है किन्तु यदि परमात्माके बाद कोई पूर्ण है तो गदहा। शीतला माताने इसीलिये इसे वाहन चुना है। माताके सम्मुख हाथी, ऊँट, जुराफा, जैबरा सभी थे किन्तु उन्होंने इसे ही चुना। और कहाँतक कहा जाय यह सिगरेट-सिगारतक नहीं पीता। किन्तु बदनामीका प्रभाव देखिये। सब जगहोंमे यह बहिष्कृत है। इसे किसीने उपहार स्वरूप काबुल भी नहीं भेजा जहाँ सुना है नहीं होता।

जैसे बदनामीका बिल्ला गदहे पर लगा दिया गया है उसी प्रकार मानव समाजमें भी कुछ वर्ग ऐसे हैं जिनपर यह छाप लगा दी जाती है। जैसे अविवाहित लोग। सब अविवाहित लोग दुराचारी नहीं होते। आचरण-हीन नहीं होते। किन्तु कुछ लोगोंने बदनाम कर रखा है। अविवाहित जन ब्रह्मचारी होते हैं उनकी पूजा होनी चाहिये। किन्तु किसीसे घर रहनेके लिये किराये पर माँगिये तो पूछा जाता है कि आपका परिवार कहाँ हैं। और कहिये कि मैं कुँआरा हूँ तब आपको जगह उसी प्रकार नहीं मिलेगी जैसे भारतकी भूमिमें पेट्रोल नहीं मिलता। और यदि कहिये कि मैं ब्रह्मचारी हूँ तो पूजा होने लगेगी।

कितने ही कवि तथा साहित्यकार इसी प्रकार बदनाम हो गये और उनकी रचनायें ऊँची कोटिकी होने पर भी जनतासे दूर रहीं। और कितने ही लेखक तथा कवि जिनकी रचना चूसी गड़ेरीके समान नीरस और कतवारके समान निरर्थक है फिर भी कुछ लोगोंने नामकी माला जपी और वह साहित्यिकोंके सरदार तथा नेता बन गये।

हुक्का-पानी

आज विज्ञापनका युग है। यदि विज्ञापन अच्छे ढंगसे हुआ, कलासे हुआ तो कैसी भी गंदी वस्तु हो, खराब हो, बेकाम हो उसका बोलबाला होता है। आजकलका टेकनीक यही है। किसीको बुरा कहने लगिये और संसार उसे बुरा समझने लगता है। बड़ी पुरानी कहानी है कि एक आदमी एक बछड़ा खरीदकर ले जा रहा था। कुछ लोगोंने उसे ठगना चाहा। थोड़ी-थोड़ी दूर पर वह खड़े हो गये। जब वह आदमी कुछ दूर गया तब एक ठगने कहा आज यह कुत्ता कहाँ लिये चले जा रहे हैं। उस आदमीने कहा यह कुत्ता है देखते नहीं। फिर दूसरे ठगने वही बात कुछ दूर पर कही, फिर तीसरेने और इसी प्रकार चौथेने। उस आदमीको विश्वास हो गया कि यह कुत्ता है। मुझे धोखा हो गया। उसने उस बछड़ेको वहीं छोड़ दिया। चार आदमियोंके कहनेसे बछड़ा कुत्ता बन गया। हिटलरने "माइन कैंफ" में बताया है कि किसी झूठको भी बारबार कहा जाय तो वह सच हो जाता है। यह सचाईकी परिभाषा कहाँ तक ठीक है मैं नहीं कह सकता किन्तु होता ऐसा ही है। इसलिये इस युगमें बद भले ही मनुष्य हो जाय किन्तु बदनाम न होना चाहिये।

यही सबसे उत्तम सामाजिक व्यवस्था है। यही जीवनकी सफलताकी सुनहली कुंजी है। आप बढ़ियासे बढ़िया और अधिकसे अधिक वारुणी का सेवन कीजिये किन्तु बोतल लेकर टहलनेका उपक्रम न रचिये। लोटिये भी तो घरके आँगनमें पबलिक रोडकी नालीमें नहीं। सारी बुराईकी जड़ बदनामी है, बुराई नहीं। स्पार्टामें भी पुराने समयमें जो चोर पकड़ जाता था वही दण्ड पाता था। जो चोरीमें पकड़ा न जाय वह चैनकी बंसी बजाये। कितना सुन्दर व्यवहारिक सिद्धान्त है। कुछ कठिन अवश्य, किन्तु सभी लाभकारी बातें कठिन तो होती ही हैं।

बुरे फंसे : मीटिंगमें

यह नया युग है और नये युगमें मीटिंगोंका वही स्थान है जो तरकारीका भोजनके साथ होता है। समाज के अंजनमें स्टीम तैयार करनेके लिये मीटिंगोंका होना आवश्यक है। और जब यह है तब मनुष्य जो समाजका एक अंग है मीटिंगोंके ही भरोसे सजीव रह सकता है। ऐसा उन लोगोंका कहना है जिनके जीवनका सात बटे आठ भाग मीटिंग बुलाने, मीटिंग करने तथा मीटिंगोंमें ही लगा रहता है।

मुझे यह बातें कभी समझमें नहीं आयीं। सभाओंमें जानेमें मुझे उतना ही आलस्य लगता है जितना पूसके महीनेमें सबेरे उठनेमें। सभा समाजों

में जानेका अभ्यास नहीं था किन्तु एक बार मुझे एक मीटिंगमें जाना पड़ा। तबसे मैंने समझा कि मीटिंगोंमें सम्मिलित होना साधारण कलेजेका काम नहीं है। एक रविवारको तीन बजे दिनके लगभग एक घनिष्ट मित्र मेरे घर पहुँचे। जाड़ा आरम्भ हो चुका था। यद्यपि उसका प्रभाव होमियोपैथिक ही पड़ा था। मैं चाय पीनेकी तैयारी कर रहा था। चीनीकी कठिनाई होने पर भी किसी मित्रके आनेपर उसे भी चाय पिलानी पड़ती है जैसे सुन्दरता न होने पर भी अवस्था ढल जानेपर पाउडर और लिपस्टिक लगानी पड़ती है। उन्होंने पूछा आज आप मीटिंगमें नहीं जायँगे क्या। विश्वविख्यात नेता आ रहे हैं, जनता टूट पड़ रही है। मैंने कहा मुझे तो पता नहीं। उन्होंने उपालम्भमें अपनी वाणी घोलकर कहा इसीसे देशकी उन्नति नहीं हो रही है। जब पढ़ेलिखे लोग इस प्रकार उपेक्षा करेंगे तब साधारण जनतासे क्या आशा की जा सकती है। मैं बोला मैं अपना अपराध स्वीकार करता हूँ। मेरे ससुरके सबसे छोटे पुत्र आये हैं। उन्हींके आतिथ्यमें रह गया। पत्र आज पढ़ा नहीं। मित्रवर बोले, किन्तु तुम्हें चलना चाहिये। सार्वजनिक कार्य निजी कार्यसे अधिक महत्त्वके होते हैं। देखिये हमारे नेताओंने घर-द्वार छोड़ दिया है। कृष्ण तो राधाको भी छोड़कर जनताके कार्यके लिये चले गये। उन्होंने इसी प्रकार अनेक तर्क उपस्थित किये और अंतमें उन्होंने कहा पाँच बजेसे सभा है। इतने महान व्यक्ति आ रहे हैं। अभीसे लोग जा रहे हैं हमलोगोंको भी एक घंटा पहले चलना चाहिये जिसमें अच्छी जगह मिल जाय। फिर उन्होंने आनेवाले महोदयके भाषणकी प्रशंसा की। कहा जब बोलते हैं जान पड़ता है कि बर्ककी आत्मा प्रवेश कर गयी है। शब्द इस प्रकार मुखसे निकलते हैं जैसे गंगोतरीसे गंगाजी निकलती हैं। एक एक शब्द हृदयमें ऐसे घरकर जाता है जैसे मिठाईके भीतर चीटा पैठ जाता है। मैंने श्रीमतीजीसे कहा मैं सभामें जा रहा

हूँ । नगरके सभी भले आदमी जा रहे हैं । सुना है ऐसा भाषण केवल एक बार यहाँ हुआ था जब राम लंका पर विजय प्राप्त कर अयोध्या लौटे थे । उन्होंने कहा ऐसी अवस्थामें मैं भी चलूँगी । किन्तु उन्हें मैंने स्मरण दिलाया अतिथि जो आये हैं उनके भोजनकी व्यवस्था कैसे होगी । तब वह मान गयीं । बोली जल्दी आना । आठ बजेतक लौट आना । मैंने कहा वहाँ मुझे चौकीदारी नहीं करनी है । कुछ ज्ञानकी वृद्धि होगी सत्य, प्रेम देशहितैषिताकी बातें सुनूँगा । आत्माका परिष्कार होगा । उन्होंने कहा ठीक है । लौटते समय एक पाव पापड़ लेते आना, पापड़ नहीं है ।

मैं और मेरे मित्र चले । राहभर इस बात पर दुख हो रहा था कि मेरे पास मीटिंगवाले कपड़े नहीं थे । सभाके मैदानमें पहुँचा । भीड़ एकत्र हो रही थी । एक मेलासा लग रहा था । रविवारका दिन ही था । सब दूकानें बंद थीं । सब लोग उसी ओर चले जा रहे थे । अचकन पाजामा पहने, टोपीवाले, नंगे सिरवाले, मूँछ-दाढ़ी वाले बिना मूँछवाले, और कुछ सूट पहने लोग भी एकत्र हो रहे थे । महिलाएँ भी थीं । घूँघटवाली और बिना घूँघटवाली कुछकी गोदमें बच्चे थे जो अपना अस्तित्व स्पष्ट करनेके लिये बीच-बीच बिगड़े वायलिनकी भाँति स्वरका अभ्यास करते थे । महिलाएँ मंचके पास बैठायी जा रही थीं । ऊँचासा मंच था उसके पास सबलोग पहुँचनेकी चेष्टा कर रहे थे । मैं बाहर ही से भाषण सुनना चाहता था । उस भीड़में बैठना उस सरदीमें भी भाड़में बैठनेके समान था । दूसरे इच्छा थी कि बाहर रहनेसे जब इच्छा होगी चला चलूँगा । ऐसी भीड़में यदि लगातार एक महीने बैठनेकी सुविधा हो तो योग और तपके बिना ही मायाका बन्धन कट जाय । किन्तु मेरे मित्र अखाड़िये मीटिंगबाज थे । उन्होंने कहा लाउडस्पीकर होनेसे भाषण तो सुनाई देगा किन्तु किसी सभामें वक्ताके निकटही

बैठना चाहिये। उसकी आँखोंका उतार-चढ़ाव, उसकी गर्दन का तनाव, उसकी पुतलियोंका नर्तन, उसके अधरोंकी ऐंठन, उसके माथेकी सिकुड़न हम अच्छी तरह देख सकेंगे। और तभी उसकी मार्मिक भावनाओंको समझकर हृदयंगम कर सकेंगे। पता चल सकेगा कि हृदयकी कितनी गहराईसे वह बोल रहा है। एक टेकनीक और उन्होंने श्रोताओंके लिये बतलायी। श्रोता यदि वक्ताके मुँहकी ओर सदा देखा करे तो कितना भी गहरा भाषण हो समझमें आ जाता है। ऐसे विशेषज्ञकी आज्ञा कैसे न मानता, मैं श्रोता बनकर गया था। धीरे-धीरे राह बनाते हमलोग बिल्कुल मंचके पास पहुँच गये। भीड़ अब तक बढ़ गयी थी।

हमलोग साढ़े चार बजे पहुँच गये थे। आध घण्टे किसी प्रकार कटे। लोगोंकी बातें सुन रहा था। पाँच बजे पता चला कि पाँच बजेका समय तो जनताके लिये बताया गया है। वक्ता महोदयको साढ़े पाँच बजेका समय दिया गया है। जिसमें उन्हें जोहना न पड़े, ठीक समयसे कार्य आरम्भ हो जाय। मैं यह तो जानता था कि घड़ियोंमें ग्रिनिचका समय एक होता है मासकोका दूसरा और न्यूयार्कका तीसरा। यहाँ पर एक और जानकारी नयी हुई कि मीटिंगोंमें श्रोताका समय और होता है और वक्ताका और। होना भी चाहिये। यदि श्रोता और वक्ता एकही धरातल पर रहें तो दोनोंमें अन्तर ही क्या। साढ़े पाँच बजा। घड़ीमें देखा सोचा कि वक्ता महोदय आते होंगे। मैं ही नहीं दूसरे भी सिर उठाकर देखते रहे। जब किसी कारका भोंपा बोलता तब समझा जाता आजके अतिथि पधारे। किन्तु उनका पता नहीं। सवा पाँच बजा। पन्द्रह मिनट तक बाट जोहना साधारण शिष्टाकी बात है। मृत्युके सिवाय और सभी इतनी इन्तजारी कमसे कम कर ही लेते हैं।

जब सवा पाँचसे सूई आगे बढ़ी तब लोगोंमें कुछ अधीरता

दिखायी पड़ी। अनेक व्यक्ति मंच पर आकर माइकसे कुछ न कुछ कह जाते थे। यह निश्चय न होता था कि कौन सचमुच अधिकारी है। पूछने पर कोई अपनेको मंत्री बताता कोई उपमंत्री कोई सहायक मंत्री कोई प्रबन्ध मंत्री। मंत्रियोंका भी एक मेलासा लगा था। अब धीरे-धीरे छ बजनेमें पाँच-छः मिनट रह गये थे। जिस समय सभा समाप्त होनी चाहिये थी अभी आरम्भ भी नहीं हुई थी। अनेक प्रकारकी बातें लोग कहते किन्तु ठीक पता न चलता कि क्यों नहीं आ रहे हैं। साढ़े छ बजे पता चला कि चल चुके हैं, अब आते ही हैं। कुछ जानमें जान आयी। प्यासके मारे हाल विचित्र था। इधर उधर देखा। कहीं कोई ऐसा दिखायी न पड़ा जो एक चिल्लू भी पानीकी सहायता करता। काशी में रहते हुए जान पड़ा अरबमें बैठा हूँ। पानवाले जहाँ थे वहाँ तक पहुँचना मेरे लिये एवरेस्टतक पहुँचना था। सूख रहा था, कहने पर मित्रमहोदय बोले महान व्यक्तियोंका साक्षात्कार करना साधारण ढंगसे नहीं होता। यह परीक्षा होती कि सचमुच आपमें श्रद्धा-भक्ति है कि नहीं। परीक्षा अच्छे ढंगसे होती रही। सात बज गये अभी वक्ता महोदयका पता न था। जो लोग घरसे बुद्धि अपने साथ लाये थे लौट गये किन्तु ऐसे लोगोंकी संख्या कम थी। जब सात बज गये मैंने अपने मित्रसे कहा संसारमें अनेक वस्तुएँ मेरे लिये अलभ्य हैं। आजके व्याख्यानको भी मैं उसी श्रेणीमें रखना चाहता हूँ। यह मेरा दुर्भाग्य है इसलिये मुझे क्षमा कीजिये। मैं अब जाना चाहता हूँ। घरपर अतिथि अलग कोस रहे होंगे। मैं आधा खड़ा था कि उन्होंने मेरा हाथ पकड़कर बैठा दिया। बोले जब इतनी देरतक बैठे रहे बेकार तो थोड़ी देर और न ठहरना मूर्खता होगी, अब तो आते ही होंगे। जब कहा है तो आएँगे ही, इतने बड़े नेता हैं झूठ तो बोलेंगे नहीं। कोई न कोई बात होगी। इन लोगोंको इतना कार्य रहता है कि साँस लेनेका

भी अवकाश नहीं मिलता। यह तो हम लोगोंका सौभाग्य है कि यहाँ आ गये। लड़ाई मैंने केवल इतिहासकी पुस्तकोंमें पढ़ी है। वैयक्तिक या सामूहिक रूपसे कभी ऐसे कार्यमें सम्मिलित नहीं हुआ हूँ। इसलिये उनसे लड़ नहीं सकता था।

सवा सात बजे एक बार पुनः सुननेमें आया कि वक्ता महोदय आ रहे हैं। विलम्ब होनेका कारण किसीने बताया कि कार बिगड़ गयी किसीने कहा नेता महोदय सारनाथका मन्दिर देखने चले गये हैं। किसीने कहा कुछ अपच हो गया है। आठ बजनेमें तीन मिनट रह तब बड़ा कोलहाल हुआ। पता चला पूजनीय वक्ता महोदयके चरण कमल व्याख्यान सरोवरमें खिले। कुछ लोग जो बैठे थे खड़े हो गये, कुछ लोगोंने हिलना-डोलना आरम्भ किया। कारसे उतरते ही बहुतसे लोगोंने उन्हें घेर लिया और उनके चारो ओर हाथ बांधकर उन्हें मंचकी ओर लाने लगे। मानो वह कोई अबला हों और उनकी रक्षाके लिये इतने लोग साहस दिखा रहे हैं। लोग चिल्लाने भी लगे। कुछ लोगोंके फेफड़ेकी कसरत भी हो गयी। इस प्रकारकी सभाएँ यदि होती रहें और सबको जयजयकार बोलनेका इस प्रकार अवसर मिलता रहे तो टी, बीके रोगमें कुछ कमी हो जाय। जिस समय वक्ता महोदय मंच पर चढ़ रहे थे भीड़में आन्दोलनसा आरम्भ हुआ। जिस प्रकार पूर्ण चादको देखकर समुद्र उसकी ओर उमड़ता है वक्ता महोदयको देखकर भीड़ उनकी ओर उमड़ी। यद्यपि उनके मुखमें चन्द्रमावाला अंश कम और धब्बेवाला अंश अंधिक था। यह सुअवसर देख अधिक प्रेमी लोग मंचकी ओर बढ़े, कुछ इधरसे उधर हो गये। अवसर अच्छा था। मैंने सोचा इसी गतिमें मैं भी सहयोग प्रदान करूँ और निकज भागूँ। किन्तु मित्र महोदयने मेरा हाथ इस प्रकार पकड़ रखा था जैसे किसी नदीके किनारे

पाँवको केकड़ा पकड़ लेता है। मनमें मित्र महोदयके प्रति दो चार प्रांजल शब्दोंका प्रयोग करके बैठ गया।

नेता महोदयको लोगोंने माला पहनायी, वंदेमातरम्का गान हुआ तब एक महोदयने उनका स्वागत आरंभ किया, स्वागतभाषण मेरी समझमें इतना ही आया कि यदि उनकी प्रतियाँ विद्यार्थियोंमें बाँट दी जाय तो व्याकरणकी अशुद्धियोंको शुद्ध करनेके लिये अच्छा अभ्यास हो सकता है, और आप इतनी देर तक बोले मानो आपही प्रमुख वक्ता थे, इतनी देर हो गयी कि मेरी सहिष्णुताका पेड़ जिसमें देरसे घबराहटका घुन लग रहा था एकाएक गिर पड़ा। ज्योंही स्वागत भाषण समाप्त हुआ मै जानेके लिये उठ खड़ा हुआ। चारो ओरसे आवाज आने लगी बैठिये-बैठिये किसीने कहा, असभ्य आदमी है, किसीने कहा पढ़ा लिखा तो जान पड़ता है, किसीने कहा गद्दार है। जिस भाँति पेटमें भोजन समानेकी सीमा होती है उसी प्रकार गाली सुननेकी भी सीमा होती है, और मैं असीमकी ओर जाना नहीं चाहता था। घूस लिये हुए चुनावके उम्मीदवारकी भाँति बैठ गया। पौने नव बजे हमारे प्रमुख वक्ता महोदयने बोलनेके लिये खड़े हुए। तालियोंकी गड़गड़ाहट हुई, अनेक महापुरुषोंको जिन्दाबाद कहा गया। यद्यपि वह सब जीवित थे। आरंभमें उन्होंने विलंबके लिये क्षमा माँगी। बोले मेरे फूफाके साढूके लड़केका मुंडन था उसीमें लोग पकड़ ले गये, इसीसे देर हो गयी। नहीं तो मैं समयका बहुत ध्यान रखता हूँ, और दो घड़ियां सदा अपने पास रखता हूँ कि एक बंद भी हो जाय तो भी ठीक समय पर पहुँच सकूँ। इसके पश्चात् भाषण हुआ। दस बजे तक वह बोलते रहे। जितनी ही देर होती और जीभ मुँहके भीतर रगड़ खाती शानपर चढ़ती जाती थी। भाषणका सारांश यह है कि उन्हें छोड़ सब देश द्रोही हैं। देशकी चिंता किसीको नहीं है। देशकी सारी दुर्दशाके कारण हम हैं।

मैं पहली बार जान गया कि हमसे अयोग्य, निकम्मा, अनाचारी, झूठा और देशको रसातलकी ओर ले जाने वाला कोई नहीं है। जनतामें कोई हयादार नहीं था नहीं तो भाषणके आधे घंटेके बाद सबका शव गंगाके वक्षस्थलपर तैरता दिखायी देता। मैं भी उन्हीं लज्जाहीन मनुष्योंमें था कि इतनी बात सुनकर अपनेको जीवित रखकर इस धरतीको मन डेढ़ मनके बोझसे दबाये रहा।

घर लौटा वक्ता महोदयकी बुद्धिकी प्रशंशा करता और अपने मित्र को आशीर्वाद देता। इतनी रातको पापड़ भी न मिला। अपने नेताकी कुनैनसी बातें सुननेके बाद घरपरके नैन देखनेका साहस न रहा। उस दिन पता चला कि महात्माजी मौन रहनेकी जो शिक्षा सबको देते थे उसमें कितना महत्व था मैं चुप रहा। न मैंने किसी बातका उत्तर दिया न कुछ बोला। तबसे मैंने प्रण किया कि किसी मीटिंगमें इस जन्ममें न जाऊँगा। अगलेमें न जानेके लिये परमात्मासे निवेदन करूँगा।

उधारका सौदा

संसारमें कितने काम हैं जो हम करते हैं लाभके लिये और बदलेमें उठाते हैं हानि। बहुतसी बातें हैं जिन्हें हम इसलिये करते हैं कि इनसे हमें सुख मिलेगा मनमें आनन्द होगा किन्तु होता है उलटा हम करने चलते हैं प्रेम कि हृदयको शीतलता मिलेगी, कलेजेको ठंढक पहुँचेगी, जीवनके खेतपर सुधाकी वर्षा होगी और परिणाम यह होता है कि या तो हमारे शरीरकी पूजा होती है या हम किसी टी. बी. के अस्प-तालमें बसेरा लेते हैं। हम करते हैं विवाह जीवनरथमें पहिया जोड़-कर सरलता तथा सुधरतासे चलनेके लिये और वह बन जाता है हमारे

आर्थिक व्यवस्थाके विस्फोटका कारण। वेतन ऐसे लोप होने लगता है जैसे पानीमें चीनी। एक मेरे मित्र थे वह गाँवसे काशी आये, धर्मसे प्रेरित होकर। गये एक मंदिरमें दर्शन करने। पुण्यका बहुत भाग बटोरनेकी उनकी आशा थी। दूरसे चलकर बहुतसा पाप कट जानेकी मधुर भावना लेकर आये थे। पाप कटनेके बदले उनके गलेकी सोनेकी जंजीर कट गयी। घरपर ऐसा मुँह लेकर आये जैसे मरे सियारका मुँह होता है। यों देखनेमें वह सुन्दर थे। क्लासिकल घटना नारदजीकी है। गये थे स्वयंवरमें अपने गलेमें हार डलवाने और बन्दरका मुँह लेकर लौटे। किंतु हम यह न समझें कि नारदसे यह प्रथा समाप्त हो गयी। आज भी और प्रति दिन बहुतोंके साथ ऐसी घटना होती रहती है।

उधार लेन-देनमें तो आजकल ऐसी घटनाएँ उतनीही सरलतासे होती हैं जितनी सरलतासे अखबार बन्द हो जाते हैं। उधार सौदा खरीदनेमें वही आनन्द आता है जो कहीं सड़कपर पड़ा हुआ दस रुपयेका नोट पानेमें। जब हम कुछ उधार लेते हैं तब यह नहीं देखते कि परिणाम क्या होगा। जैसे कुछ लोगोंके सामने जब बढ़िया भोजन आता है तब वह यह नहीं देखते कि पचा सकेंगे कि नहीं, वह तह पर तह बैटाते जाते हैं। जिस व्यक्तिने उधारकी प्रथा चलाई होगी वह महा चतुर रहा होगा। और यदि कोई खोजकर उसका पता लगाये तो प्रत्येक नगरकी चौमुहानी पर उसकी संगमरमरकी मूर्ति स्थापित करनी चाहिये। उसने मनुष्यके मनको कितना समझा था। मनोविज्ञानके महान पंडितोंके आनेके पहले उसने मानवकी इस दुर्बलता पर वह तीर मारा कि अचूक निशाना बैठ गया।

और विचित्रता यह कि उधार सौदा गरीब ही नहीं लेता। केवल अध्यापक ही नहीं जिसके वेतनकी तिथि निश्चित नहीं। जिसके पास अधिक पैसा है वह भी बहुत उधार लेता है। और जानबूझकर अपने

गलेमें फन्दा डालता है। मेरे एक मित्र थे। अच्छी नोकरी थी। साढ़े चार सौ वेतन पाते थे। समाजमें बड़ी प्रतिष्ठा थी। बहुतसे लोग जानते थे। जब कोई सरकारी पार्टी होती थी वह भी बुलाये जाते थे। उनसे किसीने कहा आप ऐसे विशिष्ट व्यक्तिको निजी मकान बनवा लेना चाहिये। बात ऐसी थी कि हृदयमें बैठ गयी। जो कुछ पैसा था उससे जमीन खरीदी। ईंट और सीमेंट, लकड़ी और लोहा दूकानदारोंने उधार दिया। उधारकी बात थी दाम धीरे-धीरे दिया जानेवाला था। इसलिये बड़ी उदारतसे सामान आया मकान बन जानेपर हिसाब करने पर पता चला कि यदि घर बेच दिया जाय तो दूकानदारोंकी बिल किसी प्रकार चुकायी जा सकती है। कारीगरोंका फिर भी कुछ देना रह जायगा।

कहावत है कि दानकी बछियाके दाँत नहीं गिने जाते। उधारकी बछियाका तो मुँह भी नहीं देखा जाता। और उससे लाभ क्या होता है इसका पता पीछे चलता है। कभी कभी जब आप दूकान पर जाते हैं और वहाँ उधार मिलनेकी संभावना रहती है तब आप इतनी उदारता से सामान खरीदते हैं जितनी उदारतासे गीली लकड़ीसे धुँआ निकलता है। खरीदनी है केवल धोती किन्तु कुरते और बंडीका भी कपड़ा खरीदे लिये चले आते हैं। आवश्यकता एक जोड़ा धोतीकी है और चार धोतियाँ और दो कुरतोंके कपड़े लेकर चलते हैं। राहमें मित्र मिलते हैं कपड़े देखते हैं तब पता चलता है कि दस रुपये वाली धोती साढ़े ग्यारह में लाये हैं और जो सिल्क बाजारमें सत्रह रुपये गज मिलता है उसे हम बीस रुपये गजका दाम लिखाकर लाये हैं। संकोच, शालीनता, बड़प्पन मुरव्वत और फिर उधार पानेकी उदारतासे हम विवश हो जाते हैं। हम लौटा नहीं सकते, मुँह खोल नहीं सकता। घर पर आने पर एक और बात देखनेमें आती है। माल कई साल पुराना है। रुपये तो आपके नाम चढ़ गये। सोचा कि दाम धीरे धीरे दिया जायगा। बिल

आयी तो उसपर लिखा था कि इतने दिनोंमें दाम न चुका दिया तो बारह रुपये सैकड़े ब्याज भी देना होगा। पहली तारीख आ गयी। वेतन मिला भी नहीं दूकानदारका तगादावाला दरवाजेके सामने खड़ा है। आप कहते हैं कि अभी तो वेतन नहीं मिला। वह बड़ी नम्रतासे कहता है जिस दिन कहिये आऊँ। आप दिन बताते हैं तब वह समय पूछता है। आप पाँच बजेका समय बताते हैं। वह चार बजे आपके द्वार पर खड़ा है। जिस प्रकार गाँवके यात्री स्टेशन पर गाड़ी आनेके दो घंटे पहलेसे जम जाते हैं वह आपके दरवाजे पर पहरा देने लगता है।

मेरे एक मित्र थे। वह उन व्यक्तियोंमें थे जिनके समान भारत-वासियोंकी कृपासे हमारे देशकी आबादी हर दस साल बाद एक करोड़ बढ़ जाती है। उन्होंने सोचा बच्चोंके कपड़ेकी सिलाईमें बहुत व्यय हो जाता है। एक सिलाईकी मशीन ले ली जाय। घरपर कपड़े सिलनेमें सुविधा और किफायत होगी। ज्योंही उनकी यह इच्छा लोगों पर प्रकट हुई, अनेक मशीनोंके एजेंट उनके घरकी मिट्टी पाँवसे दबाने लगे। एक एजेंट द्वारा किश्त पर मिलनेका आश्वासन मिलते ही हमारे मित्रने तो समझा कि हमें पारस पत्थर मिल गया। पन्द्रह रुपये महीनेकी किश्त पर मशीन मिली। मशीनका नकद दाम साढ़े तीन सौ था। उधार तीनसौ पछत्तरको मिली। किसी प्रकार वेतनसे बचा कर एक वर्ष बराबर किश्त वह देते रहे। इसके पश्चात् उन्हें एक पुत्र हुआ। उस महीनेमें किश्त नहीं दी गयी। दूसरे महीने एक लड़कीका विवाह था। किश्त देनेका ध्यान जाता रहा। तीसरे महीने उनकी पत्नीकी भावजको पुत्र रत्न हुआ उसमें कुछ अधिक व्यय हो गया। चौथे महीने नोटिस मिला, किन्तु कुछ और कठिनाई पड़ी जिसका ब्योरा मुझे नहीं मालूम। वह उस समय मेरे पास आये छठे महीने, जब कंपनीवाले इनकी कहें या अपनी, मशीन उठा ले गये। मैंने कहा मुझसे मिलनेके बजाय किसी वकीलसे मिलिये।

वकीलोंने उन्हें क्या परामर्श दिया पता नहीं किन्तु इतना मुझे ज्ञात है कि दो सौके लगभग उन्होंने रुपये दिये और उधार खरीदी मशीन भी अभी उनके पास नहीं है।

मेरे एक दूसरे मित्र थे शिक्षा विभागमें। पता नहीं उन्हें क्यों अंगूठी पहननेका शौक हो गया। मुझसे एक सोनारसे परिचय था। उससे मैंने उनका परिचय करा दिया। उन्होंने अंगूठी बनवाई और ओर अंगुलियों को सुशोभित किया। एक महीने तक तो सोनार चुप था। फिर उसने तकाजा करना आरंभ किया। रुपये उनके पास न जुटते थे। पहले दिन बदले, फिर एक से दूसरी तारीख बदली, फिर महीने बदले। उसके बाद वह कभी घरपर मिलतेही न थे। सोनार तो सोनार ही था। एक दिन उन्हें रास्तेमें मिल गया। भले आदमी जानकर उसने मारा नहीं, न गाली दी। मेरे पास लाया गया। मैंने इसके पहले जजी या मजिस्ट्रेटी नहीं की थी। मैंने सोनारसे एक महीनेका और अवकाश दिला दिया। उन्होंने उधार लेकर उसका रुपया चुकता किया। अब जिससे रुपये लिये हैं उसका तकाजा हो रहा है। मुझे विश्वास है कि यह रुपया भी फिर किसीसे लेकर लौटा दिया जायगा। तब उसका तकाजा होगा। और पृथ्वीके भ्रमणके समान यह प्रथा चलती रहेगी।

अंग्रेजी कवि शेक्सपियरने कहा है कि उधार लो न उधार दो। मैंने किसी ऐसे व्यक्तिको नहीं देखा जो वही करता हो जो शेक्सपियरने लिखा है। मैंने उन दूकानदारोंको भी देखा है जिन्होंने चमकते अक्षरोंमें लिखा है कि उधार न मांगिये किन्तु अनेक लोगोंको वहाँ भी उधार उसी सरलतासे मिल जाता है जिस सरलतासे हम मित्रोंसे माँगी पुस्तकें लौटाना भूल जाते हैं। उधार यदि न लिया जाय तो पुराना स्टाक कभी समाप्त ही न हो। पुराने चावलको छोड़कर पुरानी सभी वस्तुओंको उधारके राज्यपथ चलना पड़ता है। और उधार लेने वाला प्रातःकाल

तथा संध्या समय बेचनेवालेके नामकी माला जपता है। यह तो साधारण जानी हुई बात है कि उधार ली हुई वस्तुका हम अधिक दाम दे जाते हैं। बहुतसी उधारवाली वस्तुएँ ऐसी होती हैं कि जब तक उनका मूल्य चुकाया जाय वह समाप्त हो जाती हैं। और फिर उधार लेते हैं। किश्त पर जो चीजें खरीदी जाती हैं उनका तो प्रायः यही हाल होता है। इस प्रकार इसी उधारके चक्रमें आवागमनकी भाँति हम भटकते रहते हैं। और इस संसारमें कभी उससे पिंड नहीं छूट सकता।

आजसे कुछ दिन पहले जब गाँवका किसान अपने पिताकी मृत्युमें अथवा बदरीनाथका दर्शन करनेके लिये गाँवके सेठसे रुपये लेता था तब उसका हिसाब विचित्र होता था। उसने पचास रुपये उधार लिये और बराबर सूद देता रहा तो अपने पुत्र पर सत्तर रुपयेका ऋण छोड़ जाता था। यह भी अपने पुत्रके लिये सौ रुपयेका ऋण छोड़ जाता था। इसी प्रकार चार पीढ़ियोंमें ऋण डेढ़ सौ हो जाता था और साथ ही साथ ब्याज, अदा किया जाता रहा है। किसानकी ही नहीं, रईसों और बड़े आदमियोंमें भी यही प्रथा रही है। वह रईस क्या, जिसका गाँव ऋणमें न बिका हो। और वह किसान क्या जिसका खेत, ऋणमें न बिका हो। हमारे देशका यह अटल आर्थिक सिद्धान्त है। यह है उधारका सौदा।

उपनाम रखना

उपनाम कविके लिए उतना ही आवश्यक है जितना मकानमें खिड़की रखना या सड़कपर लालटेन जलाना। उपनामसे ही कविका प्रकाश होता है। कुछ साहित्यके समालोचक कहते हैं कि कवियोंने उपनाम इसलिए रखना आरंभ किया कि उनकी रचनाको कोई अपने संकलनमें न मिला ले। हमें यह धारणा गलत जान पड़ती है। वाल्मीकि पहले भले ही डाकू रहे हों पर कवि डाकू नहीं होता। वाल्मीकिने भी, जबसे वह कविता करने लगे, डाकेका काम छोड़ दिया। संस्कृतके कवि अपनी रचनाओंमें उपनाम नहीं रखते थे, और अंग्रेजीके कवि भी।

उपनाम-प्रथा उस समयसे चली जब कविने यह सोचा कि हमारी रचना पढ़कर लोग हमें याद रखें। उसने कहीं पढ़ लिया था या सुन लिया था कविर्मनीषी परिभूः स्वयं भूः। कवि तथा परमात्मा समान हैं। उसने सोचा, जब लोग परमात्माका नाम इतना रटते हैं, विशेषतः जाड़ेमें सबेरे स्नान करते समय, तब हमें भी कोई ढंग ऐसा निकालना चाहिये कि हमारा नाम भी लोग लिया करें। और उसने अपनी रचनाके अन्तमें अपना उपनाम बैठा दिया। जब-जब लोग पढ़ेंगे नाम लेंगे।

जिस समय कवियोंको यह बात सूझी, उन्हें कोई कठिनाई न थी। सारे संसारका विस्तार उनके सामने था। पहाड़, नदी, झील, पेड़, पौधे, फूल, पत्ते, सूरज, चाँद और तारे, पशु, पक्षी सभी उनके सामने थे। जो नाम चाहा, रख लिया कभी उसका कोई अर्थ होता था, कभी कोई अर्थ नहीं होता था। एक ब्राह्मणके सुपुत्र थे। उनका नाम रामबोला था। बहुत सुन्दर नाम। भक्तिसे भरा और साहित्यिक दृष्टिसे भी खरा था। साहित्य-सागरमें गहरी डुबकियाँ लगानेवाले पंडितोंका कहना है कि इस बालकको मलेरिया हो गया। गुरुके कहनेसे सबेरे सात पत्तियाँ सात दिनतक इस मेधावी बालकने तुलसीकी खायीं। आजकी भाँति उन दिनों लोग कुनैनके लिए इतने बेचैन नहीं रहते थे। सात दिनोंमें मलेरिया उसी प्रकार भागा जैसे घोड़ा रेसमें भागता है। बालकने उसी तुलसीको जिसने उसे शारीरिक रोगसे मुक्त किया था, अपना उपनाम बना लिया, और तुलसीदास हो गये।

लूटके मालके समान जिसे जो मिला उसने वह उठाया। धीरे-धीरे यह नौबत आयी कि उपनाम खोजनेमें कठिनाई होने लगी। अर्थशास्त्रमें एक नियम बना है कि धरती जोते-जोते उपज धीरे-धीरे कम हो जाती है। कवि बढ़ते गये, उपनाम घटता चला गया। प्रकृतिकी जितनी सुन्दर तथा सुघर देन थी सब पूर्ववर्ती कवियोंने अपना ली और ज्यों-ज्यों नये कवि

आते गये, उपनामकी खोजमें सिर मारना पड़ा। तुककी खोजसे अधिक श्रम उपनामकी खोजमें करना पड़ा। और बीसवीं शतीमें तो यह हाल हो गया कि भले आदमी खोजने पर मिल भी जा सकते हैं, किन्तु उपनाम मिलना कठिन है। आजके कवियोंको पुराने कवियोंके प्रति शिकायत है कि उन्होंने सारी सम्भावित उपमाएँ रूपक, उत्प्रेक्षाए तो ले लीं ही, उपनाम भी बढ़िया-बढ़िया ले लिया। कुछ हमारे लिए छोड़ा नहीं। अमेरिकामें जब वहाँके नये बसिया वहाँ पहुँचे तब नये नगर उन्होंने बसाये। नया नाम कहाँसे आये। तब उन्होंने अपने पुराने देशके नगरोंके नामके आगे न्यू लगा दिया। न्यू यार्क, न्यू लन्दन, न्यू जरसी, नगरोंका नाम रखा। यहाँ भी लोगोंके लिए यह द्वार खुला है। अबके कवि अपना नाम नव तुलसी, नव सूर, नव बिहारी या नव भूषण रख सकते हैं। किन्तु या तो इधर उनकी दृष्टि नहीं गयी या यह ढंग उन्हें रुचिकर न हुआ।

एक और कठिनाई कवियोंके लिए उपस्थित है। पशु-पक्षी, फूल-पत्तियोंमें जो सुन्दर तथा आकर्षक थीं उन्हें पुराने कवियोंने अपना उपनाम चुन लिया। अब इन वर्गोंमें भी जो शेष रह गये हैं उन्हें कोई अपनाना नहीं चाहता। सूरदासने सूर उपनाम अपना लिया। अब कोई एकाक्ष कवि अपनेको कानादास कहना नहीं चाहता। यद्यपि यथार्थवाद कहता है कि इस नाममें आपत्ति न होनी चाहिये। तुलसी उपनाम बन गया। लहसुन-प्याज अपना नाम रखने में कवि घबराते हैं। यद्यपि बड़ी रुचिसे इनका सेवन वह करते हैं और इनमें भी बहुत गुण हैं। बिहारीलाल एक कविने अपना नाम रख लिया किन्तु बंगालीलाल अपनेको कोई कहनेको तैयार नहीं है। नागरीदास भले ही बन गये हों, किन्तु गुजरातीदास या हिन्दीदास भी अपना नाम रखनेमें लोग हिचकते हैं। कोकिल नाम सुनकर सुरुचिका परिचय मिला, किन्तु

कोई कवयित्री अपना नाम गौरैया या बुलबुल भी रखना नहीं चाहती। गुलाब, कमल, कुमुद लोग नाम रखते हैं, परन्तु गेंदा, गुलमेंहदी या गुलबनफशा नाम रखते सुना नहीं। क्या इनमें सौंदर्य या कोमलताकी कमी है? सुधा नाम तो सुना है, किन्तु शरबत किसीका नाम सुननेमें नहीं आया। कंटक भी कविने अपना उपनाम उचित समझा, किन्तु कोई कवि नागफनी अपना नाम नहीं रखनेकी इच्छा प्रकट करता।

ऐसी अवस्थामें आजके नवीनताके युगमें कवियोंके लिए उपनाम चुननेकी बड़ी समस्या है। अब जब ऐसे लोग भी उपनाम रखने लगे जिन्होंने अपने जीवनमें कविताकी एक पंक्ति भी नहीं लिखी तब यह कठिनाई और बढ़ गयी। उन्हें इसके अतिरिक्त कोई चारा नहीं रह गया कि विचित्र तथा अछूते वनप्रान्तरसे अपनी भूख-प्यास मिटायें। प्राचीन कवियोंने फलोंके संसारपर आक्रमण नहीं किया था। किसीका नाम आम या अमरूद, सेव या संतरा, केला या कसेरू नहीं पड़ा। इसमें कोई अभद्रता न थी। सभी फल सुस्वादु, शिष्ट और साहित्यके गम्भीर रससे भरे हैं। लोग इनमेंसे उपनाम चुनते घबराते हैं। यह घबराहट हमारी उस दार्शनिक परम्परामें छिपी है जिसमें कहा गया है, हमें कर्म करना चाहिये, फलकी इच्छा नहीं करनी चाहिये। दूसरे ऋषियों और महात्माओंको यह कहनेका साहस नहीं हुआ, इसलिए स्वयं भगवान्‌ने अपने कंज मुखसे कहा। फिर भी इस युगमें परंपराको तोड़नेवाले एक कविने अपना नाम कटहल रख ही लिया। यह गंभीर कवि हैं और उनकी रचना भी गम्भीर है। पूछनेपर उन्होंने बताया कि जिस भाँति कटहल बाहर खुरखुरा होता है परन्तु अन्दर कोमल होता है उसी प्रकार मेरी कविता भी बाहर देखनेमें अनगढ़ तथा अचिक्कन जान पड़ती है, किन्तु यदि दृष्टि गड़ाकर देखा जाय तो वह अत्यन्त मधुर और कोमल है। सहसा विश्वास नहीं होता कि कोई कवि अपना

उपनाम कटहल रखेगा। किन्तु मैं जानता हूँ और मुझसे उनसे बात भी हुई है। यह काल्पनिक व्यक्ति नहीं है, इसलिए उनकी एक रचना भी सुना देता हूँ। कवि कहता है—

डंडासे डरिये सदा, नहीं किसीसे और।
कहता हूँ जो, कीजिये उसपर थोड़ा गौर।
उसपर थोड़ा गौर कीजिये सुनिये बानी।
डंडेके बलपर दुनिया भरती है पानी।
कह कटहल कविराय, हाथमें लेकर झंडा।
ठंडा जग हो जाय, उठे जब करमें डंडा।

मेरे देखनेमें यही कवि आये हैं जिन्होंने फल अपना उपनाम चुना है। सम्भव है, जो राह प्रतिभाके इस सुपुत्रने दिखायी है उसपर और लोग चले। किन्तु इस समय तो कवियोंको कठिनाईका सामना करना ही पड़ रहा है।

जब कोई युवक कविताके रणक्षेत्रमें सैनिक बनकर प्रवेश करता है तब उसे कलम, कागज और रोशनाई तो एकत्र करनी ही पडती है, उसके पहले कि वह सोचे कि मैं महाकाव्य, गीतिकाव्य या गद्यकाव्य लिखूँ, उसे उपनाम सोचना पड़ता है। उपनाम छोटा होना चाहिये, कर्णकटु नहीं मधुर होना चाहिये। ऐसा भी हो जिसकी छाप हृदयपर लग सके। स्त्रियोंको भी वह नाम अच्छा लगे। अनोखा हो, युगके अनुकूल हो, जूठा उपनाम और जूठा गिलास हानिकारक होता है। कोई संस्कृत व्यक्ति पुराना उपनाम भी ग्रहण करनेमें संकोच करेगा। भावी कवि किस कठिनाईका अनुभव करता है वही लोग समझ सकते हैं जिन्हें इसका अनुभव हो। कितनी खाइयाँ पार करनी होती हैं तब जाकर कोई कवि होता है। और उपनामोंके लिए तो समुद्रोंको लांघना पड़ता है। कविको किन-किन मुसीबतोंका सामना करना पड़ता है

उनके वर्णनका यह स्थान नहीं है। कविकी दृष्टि उन अछूते क्षेत्रोंकी ओर जाती है जहाँ अभी किसीके चरण नहीं पहुँचे। कुछ कवियोंने बहुत अच्छा चुनाव अपने लिये किया है। उससे उनकी मौलिक बुद्धि, परिष्कृत रुचि और गम्भीर चिंतनका प्रमाण मिलता है। जैसे उजबक, बेखटक, पतंग, प्रचंड, उजड्डु आदि उपनाम चुने गये हैं। इन नामोंके चयनमें उन्हें कितनी रातें जागनी पड़ी होंगी, कौन जान सकता है! उन शब्दोंका जो सम्भवतः किसी कोशकी मरुभूमिमें पड़े सूख रहे थे, उन्होंने उद्धार किया।

फिर भी जिस गतिसे कवि बढ़ रहे हैं, उपनाम रखनेकी कठिनाई बढ़ती जा रही है, मालथसने ऐसा नियम तो बताया कि किसी देशकी जनसंख्या किस अनुपातसे बढ़ती है। यह किसीने नहीं बताया कि किस स्वतन्त्र देशमें कवि किस गतिसे बढ़ते हैं। मैंने जो खोज की है (अभी वह पूर्ण नहीं हुई है) उसके आधारपर यह नियम बन सकता है कि किसी नगर, प्रान्त अथवा देशमें वर्षभरमें जितनी इञ्च वर्षा होती है उसकी दूनी संख्यामें उस वर्ष उस स्थानमें कवि होते हैं। उदाहरणके लिए मान लीजिये काशीमें सन् १९५२ में तीस इञ्च वर्षा हुई तो इस वर्ष ६० कवि होंगे। चार लाखकी आबादीमें यह संख्या नगण्य है। फिर भी इस समय यही हाल है। आगे सम्भव है अनुपात बढ़ जाय तब इस नियममें संशोधन करनेकी आवश्यकता होगी।

सभी व्यक्ति समझ सकते हैं कि इन कवियोंके लिए उपनाम कहाँसे आयेंगे। जलचर, थलचर, नभचर नाना और वनस्पति जगत्, सौर मण्डल सभीकी सीमा एक न एक दिन समाप्त हो जायगी। फिर भाववाचक संज्ञाओंकी ओर लोग दौड़ेंगे। किन्तु यह भी असीम नहीं हैं। कुछ दिनोंके बाद दबे ज्वालामुखी पर्वतके समान यह कठिनाई सामने आ जायगी।

कुछ कवियोंने इस कारण उपनाम रखना ही छोड़ दिया। यह पलायनवाद है। कवि, और उपनाम न हो, यह उसी प्रकार है जैसे बिना चीनीकी चाय, बिना चरबीका काय और बिना दूधकी गाय। यह मानते हुए भी छापेखानेके कारण अब एक कविकी कविता दूसरे कविकी कवितामें मिल नहीं सकती, यह जानते हुए कि लोग अब कवित्त, सवैया तथा पद नहीं लिखते, यह नहीं माना जा सकता कि अब कवियोंको उपनामकी आवश्यकता नहीं है। इन कठिनाइयोंपर विजय पानी चाहिये।

सरकारकी दृष्टि भी इस ओर आवश्यक है। हिन्दीमें चार तुलसी हुए, तीन सूर हुए, चार ठाकुर हुए और अनेक घनानन्द हुए। इस समय भी हिन्दीके चार सुमन हैं। इसी प्रकार और भी नाम होंगे। जैसे आविष्कारोंका पेटेण्ट होता है इसी प्रकार उपनामोंका पेटेण्ट होना आवश्यक है। नहीं तो हताश कवि जिन्हें उपनाम नहीं मिला, या तो कविता लिखना बन्द कर देंगे जिससे राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय हानि होनेकी आशंका है या दूसरोंके उपनामपर छापा मारेंगे।

भावी कवियोंसे कहना है कि वह जिस जगमें जनमे अब उनके सामने समस्या कठिन है। गुजरातके सिंहके समान उपनामोंका परिवार समाप्त होनेपर आ गया है। उनकी कठिनाईसे हमें सहानुभूति है। उन्हें हताश नहीं होना चाहिये। आप दकियानूसी पुरानी झिझक छोड़िये। खटमल, गोजर, तीतर, बटेर, बैगन, शलजम, धतूरा, मदार, ऊँट, कंगारू, ऐसे सार्थक नाम पड़े हुए हैं जिन्हें संकोचवश आप अपना नहीं रहे हैं। इन्हें अपनानेमें कोई अपमान नहीं, कोई पाप नहीं, आचरण-शास्त्रका विरोध नहीं। पुरानी सीमाको तोड़िये। तब कठिनाई पर कुछ विजय मिलेगी। सौ सालके बाद फिर देखा जायगा।

कविता और कवि-सम्मेलन

जबसे मैंने संध्या करना आरम्भ किया है तबसे मैं एक प्रार्थना अवश्य करता हूँ। चाहे गायत्री मन्त्र छूट जाय, परन्तु यह नहीं छूटता। प्रतिदिन मैं यह कहना नहीं भूलता कि 'हे अंग्रेजोंको गोरा और मुझे काला बनानेवाले, और हे गज-गामिनी और मृग-नयनी बनकर युवकोंकी मिट्टी बरबाद करनेवाले प्रभो, मुझे दूसरे जन्ममें जो चाहे बना देना, किन्तु इतनी दया अवश्य करना कि कवि न बनाना। चाहे अछूत बना देना, लाटसाहबका सईस बना देना, वाइ-सराइनका कुत्ता बना देना यह मंजूर, परन्तु कवि और वह भी हिन्दीका, ऐसा दण्ड न देना।'

ऐसी प्रार्थना करनेकी आवश्यकता क्यों पड़ी, इसके बतानेके पहले यह भी जानलेना आवश्यक है कि मैं कवि कैसे बन गया। यदि इसी प्रकार सब लोग कवि बने हैं तब तो मुझे थोड़ा सन्तोष होगा।

कुछ दिनोंकी बात है कि मैं गंगा-स्नान करने गया था। जब मैं गंगा-स्नान करने जाता हूँ तब तब कोई घटना हो हीजाती है। इसलिये मैंने अब गंगाजी जाना ही बन्द कर दिया है। मुझे याद है, एक बार नहाने गया तब अंग्रेजों और जर्मनोंमें लड़ाई छिड़ गयी; फिर एक बार गया तो बनारस के कमिश्नरके बंगलेके मैदानमें एक गधा चला गया। तीसरी बार गया तो बनारसकी म्युनिसिपैलिटी को सरकारने जब्त कर लिया। अन्तिम बारकी बात क्या कहूँ। मैं सिरमें केशरञ्जन तेल लगा कर अभी पानीमें गया ही था कि एक नववयस्का रमणी एक ओरसे नौकापर बैठी जा रही थी। मैंने उसे देखा और उसने मुझे भी देखा; क्योंकि उसकी आँखें मेरी ही ओर थीं। वह मुस्करायी। मुझे विश्वास है कि मुझे ही देखकर मुस्करायी होगी। फिर आजतक उस सुन्दरताके राज-संस्करणको मैंने नहीं देखा। न जागृत अवस्थामें, न सपनेमें। परन्तु एक बात हो गयी। मैं उस घड़ीसे कवि हो गया। कविता लिखने लगा।

उसी दिन मैंने एक रीम कागज खरीदा, एक पारकर कलम खरीदी और एक शीशी रोशनाई। पिंगल मैंने पढ़ा नहीं था। अब भी नहीं जानता। परन्तु मैं इतना जानता था कि कवि स्वतंत्र होता है। वह जो चाहे लिख दे, वह कविता है। अर्थ लगाना दूसरोंका काम है, कविका काम है लिखना। मैंने लिखना आरम्भ किया। कितने रीम कागज लिखे, कह नहीं सकता। लोग प्रण करते हैं कि दो लाख, दस लाख, बीस लाख, रामका नाम लिखेंगे। मैंने कविता लिखनेका प्रण किया।

फल इसका यह हुआ कि समाचारपत्रोंके पत्रपर पत्र आने लगे। कवि होनेसे और जगतका लाभ होता है या नहीं, परन्तु कागजके

कारखानों, स्याहीकी कम्पनियों और डाक-विभागको तो अवश्य ही लाभ होता है। यदि कवियोंके ऊपर १४४ धारा लगा दी जाय तो इसमें सन्देह नहीं कि डाक-विभागको बड़ी हानि होगी। सम्पादक लोग पत्रोंकी झड़ी लगा देते थे, परन्तु इससे तो किसी प्रकार जान छूट जाती थी; क्योंकि मैंने एक सिद्धान्त बना लिया था कि किसी पत्रका उत्तर ही न देना। दो-चार कार्ड और लिफाफे आये और उत्तर न गया, तो मनमें गाली देकर वह चुप बैठ जाते थे। परन्तु एक नयी बला कवियोंके सिरपर सवार हुई।

अधिकारोंके माँगके साथ कवि-सम्मेलनोंकी उपयोगिता बढ़ने लगी। होलीपर कवि-सम्मेलन, दसहरापर कवि-सम्मेलन, दिवालीपर कवि-सम्मेलन बसन्त-पंचमीपर कवि-सम्मेलन, शिवरात्रिपर कवि-सम्मेलन कौन त्यौहार रह गया जिसपर कवि-सम्मेलन नहीं होता। ईद और बकरीद बच गये। परन्तु इतना ही नहीं, विवाहपर, मुंडनपर, कर्णवेधनपर, पुत्र पैदा होनेपर भी कवि-सम्मेलन होने लगे। कालेजों और विश्व-विद्यालयोंमें तो नित्य ही एक-न-एक अवसर मिल जाते हैं। अब बेचारे कवियोंकी और हमारे ऐसे कवियोंकी तो जान आफतमें पड़ी।

मैं साधारण अध्यापक था। दिनभर मैं कलम-घसीटी करता था, रातमें कवि बन जाता था। किसी मित्रके यहाँ एक धेलेकी बूटी चढ़ा लेता, फिर क्या था। रामायण मैंने पढ़ी नहीं है, परन्तु इतना कह सकता हूँ कि यदि तुलसीदास हमारे सामने जीवित होते तो रामचरितमानसको भागीरथीके वक्षस्थलमें छिपा देते। सुनते हैं कि कोई कवि सूरदास भी हिन्दीमें हो गये हैं। जब वह सूर होकर कवि हो गये तब मैं तो आँखोंके ऊपर एक चश्मा भी धारण करता हूँ। मैं उनसे किसी प्रकार कम न हूँगा।

कवि-सम्मेलनोंमें बुलाये जानेके कारण मैं कवियोंमें अपनेको सर्व-

श्रेष्ठ समझने लगा। मैंने समझा कि देशका मैं नेता भी हूँ, आदर भी सब जगह होता है और परमात्माने चाहा तो भारतके प्रेसिडेण्ट भी होनेमें देर नहीं होगी।

एक बेरका जिक्र है कि एक जगह कवि-सम्मेलन हुआ। एतवारका दिन था। पत्र-पर पत्र आने लगे। यमराज भी इतना बुलावा नहीं देते। अन्तमें तार आया कि उत्तर दीजिये। भला तारका उत्तर देनेके लिये पैसे कहाँ। पहली तारीखको जो वेतन मिला था उसमेंसे साढ़े चौदहका फुलस्लीपर फ्लेक्सका एक जोड़ा खरीदा था, और साढ़े तीसका एक सिल्कका कुरता बनवाया। बाकी जो रुपये बचे थे, उसमें कई दिनोंसे सोच रहा था कि कितनेका चावल और कितनेका गेहूँ लाऊँ। तबतक कवि-सम्मेलनका तार भी आ पहुँचा। चिट्ठियाँ और तार मैं अलग फाइलमें रख देता था। मित्रोंमें अपनी धाक जमानेके लिये इनका एकत्र करना मैं आवश्यक समझता था। मेरी कोई प्रेमिका भी नहीं जिसके प्रेम-पत्र मैं एकत्र करता। मेरे लिये कवि सम्मेलनके संयोजक ही प्रेमिका थे।

अभी मैं तारकी बात भुला न था कि संयोजक महोदय पहुँचे। मुझसे बोले, 'मैं आपहीके दर्शनके लिये यहाँ तक आया हूँ। आपकी उपस्थिति आवश्यक है। बिना नगीनेकी अंगूठी बन सकती है, परन्तु आपके बिना कवि-सम्मेलन नहीं हो सकता।' मैं हृदयके भीतर मुस्करा रहा था। बोला,' छुट्टी तो है नहीं , केवल रविवारका दिन है।' उन्होंने कहा कि 'आप सोमवारके सबेरे कालेजके समय अवश्य पहुँच जायेगें'। 'मेरी जबान उस समय बिना चाभी दिए घड़ीकी भाँति बंद हो गयी थी। यह न पूछते बना कि आने-जानेका क्या प्रबन्ध होगा। किस दर्जेका टिकट मिलेगा। परन्तु उन्होंने स्वयं यह गांठ सुलझा दी। उन्होंने कहा, 'मार्ग-व्यय सम्मेलन देगा, इसकी चिन्ता न कीजियेगा।' यह सुनकर जानमें जान आयी, मानो मित्रोंको उधार दिया हुआ रुपया वापस मिला है।

शनिवारको सन्ध्या समय मैं जानेके लिये तैयार हुआ। सूटकेस और होल्ड-आल मंगनी मांग लाया। छोटी लाइनसे जाना था। ज़रा समयसे पहले स्टेशनपर पहुँच गया। हमारा एक सिद्धांत है कि निमन्त्रणमें, रेलपर सफ़र करनेके लिये और स्त्रीको सिनेमा ले जानेके लिये समयसे पहले पहुँचना चाहिये।

गाड़ीमें भीड़ थी। छोटी लाइन, रातका समय, जाड़ेका मौसम, माघ-मेलासे यात्री लौट रहे थे। इतना कह देना स्थितिको ठीक बता देगा। एक बार इञ्जनसे लेकर गार्डकी गाड़ी तक घूम आया, किसी डब्बेमें बैठनेका अवसर न मिला। फिर गार्डकी गाड़ीसे इञ्जनकी ओर चला। इस बार फिर बैरंग चिट्ठीकी भाँति वापस आया। कुली बोला--'आपको बाहर जाना है कि रेलकी परिक्रमा करनी है।' मैंने कहा—कहीं बैठाओ। उसने कहा, दो आने और लूंगा। मैंने कहा इतना नहीं दे सकता। गामासे कुश्तीमें जीत लेना उतना कठिन नहीं है, जितना बनारसके कुलियोंसे। इतनेमें लाइन क्लियर लेकर एक आदमी चला। किसी-किसी प्रकार एक डब्बेमें मैंने प्रवेश किया।

मेरे इतिहासके अध्यापकने स्कूलमें बताया था कि कालकोठरीकी घटनामें सन्देह है। मुझे अब विश्वास होने लगा कि कालकोठरीकी घटना अवश्य हुई होगी। मैं बहुत देर खड़ा रहा। जाड़ेके कारण यह नहीं पता लग रहा था कि कौन गठरी है, कौन मनुष्य। मैंने किसी तरह असबाब ठिकाने किया। ऊपरकी पटरियोंपर भी चार व्यक्ति सोये थे। और असबाब भी था। फर्शपर भी लोग जमे थे। इतती भीड़ थी, परन्तु एक पटरीपर एक ही सज्जन बिस्तरा बिछाये सोये हुए थे। उनसे मैंने बड़ी विनम्रतासे कहा कि आप थोड़ा-सा पैर खिसका लें तो मैं भी बैठ जाऊं। यह तो कह नहीं सकता था कि उठकर बैठिये। कोई उत्तर ही नहीं मिला। फिर मैंने कहा, तीसरी बार कहा। मुझे सन्देह हुआ कि

किसीने मुर्दा तो नहीं लेटा दिया है। अखबारोंमें पढ़ा था कि गाड़ियोंमें अक्सर लोग ऐसा करते हैं। गाड़ी अपनी कोमल चालसे चली जा रही थी। मैंने अपना सन्देह पुष्ट करनेके लिये अपनी छड़ीको धीरेसे उनके पैरमें कोंचा। अब मालूम पड़ा कि मेरा भ्रम था। सोये हुए सज्जनने जनरल डायरके स्वरमें पूछा—"आप बड़े बदतमीज आदमी मालूम होते हैं। आप सोने नहीं देंगे!" मैं कहना चाहता था कुछ, कह गया, 'जरा-सा सन्देह निवारण कर रहा था।' इतना कहना था कि उनकी आंखें सिगनलकी लाइटकी भांति लाल हो गयीं और उनके माथेपर पुराने पहने हुए पतलूनकी भांति बहुत-सी सिकुड़नें पड़ गयीं। बड़ी हुज्जत हुई, बड़ी तकरार हुई। उनके मनमें जो आता गया, कहते गये। और कह-सुनकर फिर लेट गये। मुझे बड़ी चेष्टा करनेपर एक पटरीपर दो इञ्च चौड़ा स्थान मिल गया। मेरे लिये इतना ही क्या कम था। मैं था कवि। कमसे कम शायरोंकी प्रेमिकाओंकी कमरसे तो चौड़ा ही था।

आध घण्टेके लगभग बीता होगा कि सोये हुए सज्जनके कम्बलके ऊपर, ऊपरकी पटरीपरसे पानीकी पांच-सात बूंदें गिरीं। मैं देख रहा था और सोच रहा था कि पानी कहांसे आया। फिर पानी गिरा, तीन-चार बेर गिरा। जब छनकर पानी उनके पेट तक पहुँचा तब वह चकपकाकर उठे। उठकर वह इधर-उधर देख ही रहे थे, और मैं भी इस नवीन दृश्यको देखनेकी तैयारी कर ही रहा था कि ऊपरसे एक टीनकी सुराही लड़खड़ाते हुए उनकी सोनारकी निहाईके समान खोपड़ीपर गिरी और उसमेंसे लगभग तीन पाव जल उनकी धोतीपर वियोगिनीके आंसूके समान गिर पड़ा। अन्तर केवल इतना था कि वियोगिनीके आंसू गरम होते हैं, यह पानी कुछ ठंडा था। पानी बहुत अधिक नहीं था, इसलिये सभी धोती तो भींगी न होगी, परन्तु एक तिहाई धोती भींगी होगी, ऐसा मेरा

अनुमान होता है। आपेसे बाहर हो गये। बिगड़कर बोले—'यह किस बदतमीजने बेशऊरीसे पानी रखा है।'

ऊपर बलियाके एक तिवारी बैठे थे, उन्होंने अपनी मातृभाषामें कहा—'हमार तिरबेनीके जल गिर गयल, और ई फारसी बूकत हौंअन। तू त पबित्तर होय गइल, पर गंगाजलवा कौन ससुर देई।'

मैंने बहुत चाहा कि गम्भीरताकी मुद्रा साधे रहूँ, पर हँसी आ ही गयी। मुझे हँसते देखकर सारे डब्बेमें कहकहा जो आरम्भ हुआ, तो बाबूसाहबके मुंहपर मानो गुडरेजका ताला लग गया। सफर-भर वह किसीसे कुछ न बोले। ट्रङ्कमेंसे धोती निकालकर बदली।

मैं प्रातःकाल किसी प्रकारसे मरते-जीते अपने नियत स्टेशनपर पहुँचा। नींद तो आंखमें कसम खानेको भी नहीं आयी। हां, भीड़के मारे सरदी न लगी। जब स्टेशनपर सबेरे उतरा, तब ऐसा मालूम हुआ कि ध्रुव प्रदेशमें हूँ।

कोई उधरसे स्टेशनपर आया नहीं, यद्यपि मुझसे कह दिया गया था कि कोई वालण्टियर अवश्य रहेगा। सम्भव है, सरदीके कारण वालण्टियर न आये हों। बड़ी मुश्किलसे पूछते, पता लगाते मैं निर्दिष्ट स्थानपर पहुंचा। पहुंचता कैसे न? कविता पढ़ने निकला था। मुझे तो यदि नरकमें भी कवि-सम्मेलन हो तो जानेमें आपत्ति न होगी। हां, सभापति ज़रा ठिकानेका होना चाहिये। वहां मुझे ठहरनेके लिए एक कमरा दे दिया गया। थोड़ी ही देर पीछे जलपानके लिये मिठाइयां आयीं। बड़ी खातिरदारी और सत्कार होने लगा। कवि-सम्मेलनमें जाना और ससुरालमें जाना यद्यपि बराबर तो नहीं है, तो कम भी नहीं है। बहुत-से लोग पूछने आते थे कि कोई कष्ट तो नहीं है। जिस प्रकार बलिदानके बकरे-को खूब खिलाते हैं और गलेमें माला पहनाकर आदर करते हैं, उसी

प्रकार कवियोंका भी सत्कार किया जाता है। बिना उजरत लिये हुए वह गवैया या भांड़ आसानीसे मिल जाते हैं।

कविता पढ़नेका समय आया। हाल खूब सजाया गया था। एकके बाद दूसरे कवि वहां पधारने लगे। चुन चुनकर लोगोंने अपने कपड़े पहने थे। सभापति महोदय आये। सब लोगोंने खड़े होकर उनका स्वागत किया। सम्मेलन आरम्भ हुआ।

किसीने असावरीकी लय पकड़ी तो किसीने भीमपलासीका सरगम साधा। तो किसीने कौवालीही पर कनायत की। हारमोनियम और तबला नहीं थे, नहीं तो और भी मज़ा आ जाता। आशा है कि नये कवि-सम्मेलनवाले यदि हारमोनियम, सारंगी और तबलेका प्रबन्ध नहीं करेंगे तो कमसे कम एक तानपूरेका बन्दोबस्त तो अवश्य ही किये रहेंगे। भला इन कोकिलाओंके स्वरोंमें मुझ कौवेकी आवाज क्या भली लगती। अड़सठ कवियोंके पीछे मेरी बारी आयी। पूरे एक सौ तेरह कवि थे। मुझे उनके नाम तो क्या, उपनाम भी नहीं याद हैं। पलाश, चुनमुन, बबूल, पालक, करील, कलोल, कपाल, कमाल, मालूम नहीं कौन-कौन लोग। किसीने छायावाद पढ़ा, तो किसीने मायावाद और गायावाद। शृंगाररस और राजनीतिक कविताओंका बहिष्कार था। व्रजभाषामें भी कवितायें पढ़ी गयीं, खड़ी बोलीमें भी। व्याकरणयुत और व्याकरणहीन, तुकसमेत और बेतुकी। किसी भी प्रकारकी कविता बची नहीं। जब एक बजेके लगभग समय हुआ तब मैंने संयोजक महोदयसे कहा कि मुझे ढाई बजेकी गाड़ीसे काशी लौट जाना है। हां-हां करते हुए इधरसे उधर वह कहीं गायब हो गये। किसी प्रकार सम्मेलन समाप्त हुआ। भोजनके नाम तो आज एकादशी थी। डेढ़ बजे यह आज्ञा हुई कि आप लोग भोजन कर लीजिए। मैं जिस कमरेमें ठहरा था, वहां और भी कवि थे। हम लोगोंको भोजन वहीं आया। कचौरियां प्रदर्शनीमें

रखने योग्य बनी थीं। यदि एक सप्ताह ऐसी पूरी या कचौरी खानेको मिलें, तो निश्चय है कि उन्हें तोड़ते तोड़ते हाथके पुट्ठे तैयार हो जायं किसी प्रकार पन्द्रह मिनटमें आधी पूड़ी मैंने खायी। यदि गाड़ी पकड़नेकी जल्दी न होती तो पन्द्रह मिनट और लगते। इसके बाद किरायेकी बात आयी। किससे मांगूं। जो सज्जन मुझे बुलाने गये थे, उनका पता नहीं। वह तो गूलरके फूल हो गये। किसे कहूं। क्या कहूं। इसे सोचनेमें मिनटों लग लये। बड़ी हिम्मत की, मानो परीक्षाके हालमें नकल करना है। एक सज्जनको बुलाकर मैंने कहा, 'अब मेरी गाड़ीका समय निकट है, मैं जाना चाहता हूं।' उन्होंने हँसकर उत्तर दिया, 'इस समय जाइयेगा। इस समय तो चिड़ियां भी घोंसला नहीं छोड़ेंगी।' मैंने कहा, 'मेरा तो कल स्कूल है' वह बोले, मुझे बड़ा दुख है। आपने बड़ा कष्ट किया। आपकी वजहसे बड़ी रौनक थी।'' मैं फिर चक्करमें पड़ा। उन्होंने खर्चके बारेमें उन्होंने कुछ कहा ही नहीं। मैं जाड़े में काँपता हुआ खड़ा था, पूछा संयोजक महाशय कहा हैं? उन्होंने कहा—क्यों, कहिये क्या काम है? मैंने कहा उनसे मिलना है। एक आदमी उन्हें खोजने गया। फिर दूसरा गया, फिर तीसरा गया। मालूम होता था उधरसे लौटने का रास्ता ही बन्द है। बड़ी कठिनाई से संयोजक महाशय आये। वह हमारा अभिप्रायः समझ गये। बोले, बात यह है कि अभी हिसाब नहीं हुआ। प्रातःकाल मैं यात्रा-व्यय आपकी सेवामें अर्पण करूंगा। मैंने कहा तब तो नौकरी भी गई। फिर मुझे यहीं रहना होगा। बहुत कहने और प्रार्थना करने पर उन्होंने दो रुपये निकाल कर मेरे हाथमें रक्खे और कहा यह अपने पाससे दे रहा हूँ। किसी प्रकार किस्मत ठोकते कमरेमें आया तो ओढ़ने वाला कम्बल वहाँसे कवि-सम्मेलन करने चला गया था। मेरे कमरेमें सभी कवि थे, फिर कौन ले गया। यह सोचनेका समय नहीं रह गया था। स्टेशन

आया। बिछानेका कम्बल ओढ़कर किसी प्रकार सफर पूरा किया। यदि मैं कवि न होता तो निमोनिया अवश्य हो ही जाता। परन्तु हृदय पहले हीसे नहीं था, फेफड़ोंके होनेमें भी सन्देह ही था। दो ऐसे सम्मेलनोंके बाद घरमें ओढ़ने बिछानेकी कोई वस्तु न रह जाती और चार कवि सम्मेलनके बाद तो शरीर जमकर यमराजके कर कमलों में सादर समर्पित हो जाता।

पंथ

पंथ अनेक हैं। सब देशोंमें हैं। उनके नाम अलग-अलग होंगे किन्तु उनका अस्तित्व है। बहुतसे पंथ केवल हमारे देश में ही हैं जैसे कबीर पंथ, नानक पंथ, दादू पंथ, अघोर पंथ। अनेक पंथ अनेक नामोंसे विश्वमें फैले हुए हैं। कालके अनुसार पथोंमें भी परिवर्तन होता रहता है। अथवा यों कहिये युगके अनुसार पंथ बन जाते हैं। बहुतसे पंथ सर्वव्यापी हैं। उस पंथके माननेवाले संसार भरमें फैले हैं। चाहे नाम अलग-अलग हों किन्तु सिद्धान्त एक ही होता है। प्राचीनकालमें एक पंथ था जिसे आज-कल भी भाषामें कुल्हाड़ा पंथ कह सकते हैं। लकड़ी

पर जैसे कुल्हाड़ी चलती है उसी प्रकार लोगोंका आचार होता था। लकड़ीपर कुल्हाड़ा चलनेपर लकड़ियाँ इधर उधर छिटका करती हैं। मनुष्य जो कार्य करता था उससे सभीको लाभ होता था। राजाका धन सबके लिए होता था। राजा जनकका उद्यान इस बातका उदाहरण है। यदि ऐसा न होता तो राम तथा लक्ष्मण बिना पूछे उसमें जा कैसे सकते थे। जा ही नहीं, उसमें जाकर पुष्प चयन भी करने लगे। निश्चय ही इससे पता चलता है राजाओंके बाग भी सबके लिए सदा खुले रहते थे। साधारण व्यक्तिकी बात ही क्या। अभी शोषणकी प्रवृत्ति नहीं हुई थी।

धीरे-धीरे वह युग बीता। इतिहासने प्रगतिके पथपर पाँव उठाया। नवीन उपकरण, नये आविष्कार जन्मे और मनुष्यके हृदयने सभ्यता सीखी। उसने सोचा एकके कार्यसे सबको लाभ क्यों होना चाहिये। जिसके साथ हमारा सम्पर्क हो उसीको लाभ हो। अपने कुटुम्ब अपने बाल बच्चोंको लाभ मिलना चाहिये। तर्क बहुत ठोस स्थानपर खड़ा है जब वह यह कहता है कि मैं कोई काम करूँ तो दुनिया भरके लिए क्यों करूँ। इस पंथका नाम आरा पंथ है। आरा जब लकड़ी चीरता है तब एक भाग एक ओर और दूसरा भाग दूसरी ओर गिर जाता है। चीरनेवालेको कुछ नहीं मिलता। यह उस युगकी कथा है जब लोगोंके मनमें था कि बराबर-बराबर सबको कर्मोंके अनुसार मिलना चाहिये। इसे आरा पंथ कहा जाता है। इस पंथके माननेवाले इस सिद्धान्तके थे कि आप उनके साथ भलाई करेंगे तो वह भी आपके साथ भलाई करेंगे। कोई कार्य किसीके यहाँ करेंगे तो अपने लाभके साथ-साथ दूसरेका लाभ भी उतनी मात्रामें करेंगे जितनी मात्रामें उन्हें होता है। आरापंथी कार्य भी उसे कहते हैं कि ऐसा कार्य किया जाय जिससे कर्ताको भी लाभ हो और लोगोंको भी। स्वार्थ सीमित रहता है। स्वार्थके साथ परार्थ भी रहता है।

कलियुगमें लोगोंके विचारोंमें क्रांति हुई। यह क्रान्तिका युग ही कहा जाता है। कितनी क्रांन्तियाँ इस युगमें हुई, मैं गिनाना नहीं चाहता। लोगोंको स्वयं ही क्रान्तियाँ याद होंगी। किन्तु क्रान्तिने यह भी निश्चय किया कि मनुष्य स्वयं ईश्वर है। वही संसारका निर्माता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि इस पृथ्वीकी तहें उसने जमायी हैं। वह तो सूर्य इत्यादिकी अनेक क्रियाओंसे बन गयीं। किन्तु समाजका सर्जन तो उसीने किया और जब समाज उसने बनाया तब इतिहास भी उसीने बनाया तब उससे वही लाभ भी क्यों न उठाये। यह कहाँका न्याय है कि मैं परिश्रम करूँ और उसका लाभ उठायें दूसरे। इसीलिए पिता नहीं चाहता मेरी कमाईका उपभोग मेरा पुत्र, मेरी स्त्री, मेरा बूढ़ा पिता मेरी माँ करें। सबको अपने-अपने लिए कमाना चाहिये। इस पंथको बसूला पंथ कहते हैं। कोई व्यक्ति जब बसूलेसे लकड़ी छीलता है सारी लकड़ी छीलनेवालेके सामने गिरती जाती है। उसने परिश्रम किया तो दूसरा लेगा कौन? मार्क्सवादी आर्थिक विचारधाराकी यही नींव है। उसीका दूसरा नाम है बसूला पंथी। हमारी भारतीय जनताके लिए यह शब्द अधिक उपयुक्त है। दूसरे शब्द विदेशी भी हैं, और समझके लिए गरिष्ट भी हैं। बसूला पन्थी कहनेसे बसूला चलनेका चित्र सामने खड़ा हो जाता है जिसमें लकड़ीके टुकड़े सामने उड़ते चले आते हैं।

सम्भव है पुरानी विचार धारावाले इसे स्वार्थ समझें। अपना स्वार्थ देखना अपने ही लिए सब कुछ कहना स्वार्थ कहा जाता है। किसी युगमें समयके साथ शब्द तथा उनके अर्थ भी बदलते हैं। आजकल अपने लिए सब कुछ करना न्याय समझा जाता है। महिलाओंकी आर्थिक स्वतन्त्रता, मजदूर दलका संघटन, सबको कार्य करनेकी आवश्यकता इसी बसूला-पंथके पर्याय हैं। प्रत्येक व्यक्ति कार्य करे और स्वयं उसका उपभोग करे। न दूसरोंको कुछ दे न उनसे कुछ ले।

पंथ

बसूला पंथ युगकी पुकार है। इतना ही नहीं कि लोग अपने लिए धन अर्जन करते हैं। सब कार्य ही अब अपने लिए होता है। कवि कविता लिखता है अपने लिए क्योंकि आज कवि इतना ऊँचा पहुँच गया है कि दूसरे उसकी बात समझ नहीं सकते। समाचार पत्र निकलते हैं तो अपने लिए। उसमें ऐसा कुछ नहीं रहता जिससे दूसरोंको कुछ लाभ हो। हाँ दवाइयोंके कुछ विज्ञापनसे जहाँ पत्रवालोंको पैसा मिलता है दूसरोंको भी लाभ हो जाता है क्योंकि जब और औषधियाँ विफल हो जाती हैं तब विज्ञापन वाली औषधियाँ ही तो उन्हें कष्टसे मुक्ति प्रदान करती हैं। इसी प्रकार जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें बसूला-पंथके अनुगामी लोग हो रहे हैं।

पलायन

महाभारतकी लड़ाईके समय संभवतः अर्जुनने कहा था 'न दैन्यं न पलायनं'। क्यों कहा यह जाननेका इस समय इस लेखकके पास कोई साधन नहीं है। भंडारकर रिसर्च इंस्टीट्यूट-वाले इसपर प्रकाश डाल सकते हैं। किन्तु अर्जुनकी वीरताने, साह-सने, निर्भीकताने यह शब्द कहलाये यह मैं माननेके लिए तैयार नहीं हूँ। वीरताका यह अर्थ कैसे हो सकता है कि तोप या तलवार या मशीनगनके-सामने छाती खोलकर खड़ा हो जाय। इसका अर्थ यदि कुछ हो सकता है तो यही कि इस प्रकार आचार करनेवाला व्यक्ति संसारके ज्ञानसे अनभिज्ञ है। इतिहास बताता

है कि इस प्रकार आचरण करनेवाले नाश होगये। बचे वही जिन्होंने लड़ाईसे भागकर अवसर देखकर वैरीकी दुर्बलताके समय आक्रमण किया।

सुख और शांतिके लिए कर्मक्षेत्रसे अलग हो जाना ही आवश्यक है। यदि ऐसा न होता तो सरकार अपने कर्मचारियोंको एक अवधिके पश्चात् पेंशन—क्यों दे देती। अवकाश ग्रहण करनेका स्पष्ट अर्थ है कर्मभूमिसे हट जाना इससे शरीरको सुख मिलता है, आत्माको आनन्द मिलता है। स्वर्ग तथा अपवर्गके लिए राह बनती है। बड़े-बड़े नेताओंके कर्मठ कार्यकर्ताओंके लिए हम अवकाशकी आवश्यकता समझते हैं। कहा जाता है जब वह थक जाते हैं उन्हें विश्रामकी आवश्यकता पड़ती है। यह विश्राम क्या है? कार्यसे पलायन। प्रकृति चाहती है कि हम पलायन करें।

यह प्रश्न महत्वका है कि कार्य क्षेत्रमें डटे रहना देश और व्यक्तिके लिए हितकर है अथवा वहाँसे पलायन कर जाना। चर्म चक्षुओंसे देखनेमें तो अवश्य ही यह जान पड़ता है कि कर्मभूमिमें काम करने वाला ही महान् पुरुष है। किन्तु हिन्दू संस्कृतिके इतिहासकी गतिविधिसे पता चलता है कि कर्म क्षेत्रमें डटे रहनेवालोंकी अपेक्षा घरपर रामका भजन गाने वालोंका मान अधिक होता है। इसकी शक्ति भी अधिक होती है। बड़ा वीर अपना पराक्रम थोड़ा बहुत दिखा सकता है। किन्तु मैंने सुना है हिमालयकी कंदरामें संसारसे बहुत दूर बैठा योगी इतनी प्रबल साधना कर लेता है कि एक क्षणमें जो चाहे कर सकता है। कभी कभी क्रोधसे जब वह पहाड़के टुकड़ेको देखता है पत्थरका खंड-भस्म हो जाता है। वही संखियाका रूप धारण कर लेता है। ऐसे महान महर्षियोंके अभिशापसे कितने ही सिंह लोमड़ी बन गये जो हिमालयकी तराई छोड़कर सोनपुरके खेतोंमें रातमें चरा

करते हैं। उनकी आँखोंमें प्रलय नाचता है और साथ ही असंख्य वैभव क्रीड़ा करते हैं।

नये ढंगके लोग जिन्होंने केवल जड़वादकी शिक्षा पायी है इन बातों पर कैसे विश्वास कर सकते हैं। राइट बंधुओं तथा कांउटजेपलिनने हवामें उड़ने का प्रयोग जब किया था और रावणने विमानका प्रयोग किया था उससे पहले यहाँके महर्षि स्वयं हवामें उठकर प्रातः पचीस सहस्त्र फुट ऊँचे उड़कर कंचनजंघाकी चोटीपर संध्या करते थे। मान-सरोवरमें आचमन करते तथा गौरीशंकरपर उषः पान करके अपनी गुफामें लौटते थे।

यह कल्पनाकी बात कैसे कही जाय। आज भी ऐसे योगिराज इस देशमें हैं जिनकी कुटियामें शनिवारकी रातको ईश्वर आते हैं। रातभर बातचीत होती है। रविवारके सबेरे फिर लौटकर वह अपना काम-धाम देखते हैं। किसी दिन जब किसी व्यक्तिकी अकाल मृत्यु हो जाती है, अथवा कोई अन्यायपूर्ण कार्य इस संसारमें हो जाता है तब समझना चाहिये कि ईश्वर उस समय अपना स्थान छोड़कर किसी योगिराजसे वार्तालाप करने चले गये हैं। हम इसे पलायन कैसे कहें। विश्वकी विभूति प्राप्त करना पलायन कैसे हो सकता है।

'अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम; दास मलूका कह गये सबके दाता राम।' जिस महर्षिने यह स्वर्ण वाक्य बनाया उसकी प्रशंसा जितनी की जाय कम है। इस समय हमारे देशको यही समझना है। लोगोंको अपने घरमें एक कमरा बनवा लेना चाहिये। जहाँ तक हो उसमें प्रकाश न जाय। सांसके लिए हवा आती जाती रहे। उसमें बैठकर थोड़े ही दिनोंके बाद वह क्षमता प्राप्त हो सकती है जो न विश्व-विद्यालयमें प्राप्त हो सकती है न किसी कालेज में। मन्त्रोंको सिद्ध करना चाहिये, जगाना चाहिये, योगकी क्रियाओंका अभ्यास करना चाहिये।

भले ही संसार आटम बनाये। क्या ऐसे मन्त्र कहीं नहीं हैं जिनके उच्चारणमात्रसे सारे विश्वका विध्वंस हो सकता है। तब क्यों इतने धनका अपव्यय किया जाय, शक्ति लगायी जाय। कहते हैं इसी काशीमें एक सज्जनने गायत्री मन्त्र इतना सिद्ध कर लिया था कि गंगा स्नानके पश्चात् धोती निचोड़ते समय कुछ क्रोधसे उन्होंने जहाँ भूर्भुवः कहा—धोतीमें आग लग गयी। इसलिए देशवासियों को सब कुछ छोड़कर इसी ओर ध्यान देना चाहिये। घरमें बैठकर देश-सेवा हो सकती है। कांग्रेस-कमेटी, असेम्बली, पार्टीमीटिंगमें क्या रुचि है। भाइयों ठीक राहपर आओ।

पीड़ा

पीड़ा पर जितनी कविताएँ लिखी गयी होंगी उतनी शायद राम और कृष्णपर भी न लिखी गयी होंगी। इसका कारणमात्र यही है कि राम और कृष्णके सम्बन्धमें सब लोग नहीं जानते। इसका अनुभव तो उन्हीं लोगोंको हुआ होगा जिन्होंने हिमालयकी कंदरामें बैठकर चट्टानोंकी रेखाएँ गिनीं अथवा किसी निर्जन वनमें बैठकर उस समय पत्तोंकी सरसराहटमें परमात्माकी वाणी सुनी, जब अंजनीकुमार सवेग टहलने निकले। परन्तु पीड़ाका अनुभव तो मनुष्यमात्रको होता है। सम्भवतः प्राणिमात्रको। यह मान लेनेपर भी कि प्रेमियों और कवियोंकी नाड़ियाँ ऐसी

बनी हैं कि उनपर पीड़ाका प्रभाव उतनी ही शीघ्रतासे होता है जितनी गर्मी और ठण्डका पारेपर, जो कवि नहीं है उसे भी पीड़ा होती ही है। नयेसे नया साहित्यकार किसी गदहेको कवि नहीं कहेगा। चाहे वह गदहा पूर्णिमाकी रातमें गंगाके किनारे टहलता हो अथवा ताजमहलके प्रांगणमें लोटता हो, जहाँके कण-कणमें मुमताजबीबीकी आत्मा सनी हुई है और जहाँके पवनमें प्रणयका पतंग उड़ता है। फिर भी यदि किसी धोबीसे आप इण्टर व्यू लें तो पता चलेगा कि उसके गदहेको पीड़ा होती है। मुझे तो उसका स्वर ही सदा पीड़ा, टीस, वेदना, कसक, दर्दका संगीत जान पड़ता है।

पीड़ाका इतिहास उतना ही मीठा होता है जितनी पीड़ा कष्ट देने-वाली। मुझे स्मरण है जब मैं चौथी कक्षामें क्वींस कालेजमें पढ़ता था। एक पण्डितजी पानके प्रेमी थे और विद्यार्थियोंको पैसा दे देते थे कि बेटा, पान लाओ। एक दिन उन्होंने मुझे भी एक पैसा दिया। उन दिनों एक पैसेमें चार बीड़े पान मिलते थे। यह पान खरीदनेका मेरा पहला अवसर था। पान लेकर जब चला तब मैंने देखा कि पत्तेमें कुछ अलगसे भी है। मैंने समझा तमोलीने भूल की है। पानके भीतर रखना भूल गया है। पण्डितजी रुष्ट होंगे। यह सोचकर मैंने एक पान खोल-कर सब सामग्री उसीमें डाल दी। पान लाकर पण्डितजीको दे दिया। पण्डितजीने तुरत पान अपने विशाल मुखमें रख लिया और पूछा कि इसके साथ और कुछ नहीं लाया। मैं उत्तर दे ही रहा था कि मैंने आपको कष्टसे बचानेके लिए सबका सम्मेलनकर दिया है वह मेरा पूरा उत्तर न सुन सके और न मैं अपना उत्तर पूरा कर सका, जैसे परीक्षा-भवनमें विद्यार्थी बैठा हो घण्टा समाप्तिका बज जाय और वह उत्तर न दे सके। पण्डितजीका मुख एकाएक हिचकियोंकी माला जपने लगा। ऐसा भी मुझे जान पड़ा कि उनकी आँखें टेसूका फूल हो गयीं हैं और

अपने कोटरोंको छोड़कर भागना चाहती हैं। पण्डितजी एकाएक कक्षा-मेंसे उठे और बरामदेमें चले गये। हवामें इस प्रकार टहलने लगे जैसे पागलखानेकी कोठरीमें पागल टहलता है। पानी पाँडेसे पानी मँगाकर पिया। मुँहपर पानी इस प्रकार लगाया जैसे पोतला बनानेमें घी (या आजकल वनस्पति) लगाया जाता है। टहलना तथा मुख-प्रक्षालन-क्रिया समाप्त करके पण्डितजी सब विद्यार्थियोंको छोड़ मेरे पास उसी प्रकार पहुँचे जैसे कविता-कानन-केसरी कालिदासने इन्दुमतीके लिए लिखा है कि 'महीधरं मार्गवशादुपेतं स्रोतोवहा सागरगामिनीव'। अंग्रेजी कलचरका ज्ञान कम होनेके कारण उन्होंने 'इंट्रोडक्शन' की आवश्यकता न समझी और मेरी पीठपर इस प्रकार तीन मुक्के लगाये जैसे कोई लोहार घन चला रहा हो। मणिपूर चक्रसे अनाहत चक्रतक 'घनमें सुन्दर' बिजली-सी, बिजलीमें 'चपल चमक-सी' एक चमक उठी और सुषुम्नासे होती हुई ईड़ा और पिंगलामें चन्द्रप्रभा बाँधके जल समान फैल गयी। किंतु मैं अभागा भागा नहीं वहीं खड़ा रहा। शब्दशास्त्रियोंके अनुसार भाषाका विकास पीछे हुआ है। क्रियाकलाप समाप्त करके पण्डितजीने वैखरी वाणीसे कहा—'क्यों रे, मेरा जीव लेना चाहता था।' भला यह हुआ कि उसके बाद जीभ ही चलती रही और हाथका चलना बन्द हो गया। पण्डितजीके कर रूपी हथौड़ेके प्रहारसे जो पीड़ा मुझे हुई उसकी स्मृति आजतक है। कभी-कभी यह भूल जाता हूँ कि बाबर, हुमायूँका बाप था कि हुमायूँ बाबरका, इतिहासकी तिथियाँ भूल गया। पुस्तक देखकर बताना होगा कि राजयाके कितने पति थे। केवल एक ही ऐतिहासिक घटना नहीं भूला हूँ। अपने विवाह की।

पंडितजीके घूसे अभीतक याद हैं, क्योंकि उसमें पीड़ा थी। कितनी पार्टिया मैंने अभीतक खायीं, कितने कविसम्मेलनों में कितना पुरस्कार मिला, यह सब भूल गया। पण्डितजीकी बात भी और पीड़ा पहुँचाने-

वाली बातें न भूलीं। घोड़े घासपर जीते हैं, बैल भूसेपर, यूरोपवाले एशियापर, भारतवासी वनस्पतिपर, क्षयके कीटाणु भारतवासियोंके फेफड़ों पर और कवि पीड़ापर।

फाटका न हो तो मारवाड़ी लोग वही हो जायँ जो दसमेंसे एक हटा लेने पर होता है, रोगी न हों तो डाक्टर वहीं पहुँच जाय जहाँ रोगी पहुँचनेवाले होते हैं, पानी न हो तो दूधका व्यापार बन्द हो जाय, विश्वविद्यालय न हों तो रोमांसकी अंत्येष्टि हो जाय और पीड़ा न हो तो कविता माता-महीको गंगाजलमें तुलसी और सोनाका मिक्सचर पीना पड़े। कनवासिंग किये बिना विद्यार्थियोंको प्रथम श्रेणी मिल सकती है, दहेज विना विवाह हो सकता है, धर्मशास्त्र जाने बिना पुरोहित बना जा सकता है, मेडिकल कालेजमें प्रवेश किये बिना चरक, सुश्रुत, बूअली सेना, जेनर, लिस्टर और पास्तूर सरलतासे लोग बन सकत हैं, किंतु पीड़ा बिना हिन्दी कविताका क्या होगा यह सोचते ही उमंगें शांत हो जाती हैं, हृदय में नीरदमाला छा जाती है और हृदय समाधि बन जाता है। हिन्दीका भविष्य उत्तरी ध्रुवका दिसंबर बन जाता है। शेलीने एक सौ बत्तीस साल पहले लिखा था—

'अवर सैडेस्ट सांग्ज आर दोज,
दैट टेल आव स्वीटेस्ट थाट।'

उसे क्या पता था कि मेरा यह वाक्य तुलसी और सूरके उत्तराधिकारियोंके लिए वेद, इंजील और कुरान बन जायगा। हमारे कवि सच्ची अनुभूति व्यक्त करते हैं। उन्हें हृदयमें, मनमें, फेफड़ेमें और पेटमें पीड़ा होती है। हाथ, पाँव और सिरमें तो होती ही है। तब और क्या लिख सकते हैं। यदि उर्दूका कवि कब्रमें भी प्रियतमकी ठोकरें खाकर तिलबिलाता है, उसके टाइम टेबुलमें शिकायत और रोनेका ही कार्यक्रम रहता है। उसका हृदय पेट्रोमैक्स और कलेजा चटनी बना

रहता है तो हिन्दीका कवि करुणाके सागरमें पतवारविहीन अपनी जर्जर नौका लिए हुए घूमता रहता है। आँसूकी नदीकी इतनी बाढ़ है कि पंचवर्षीय योजनामें उसपर भी बाँध बाँधनेका कार्यक्रम बने तो आश्चर्य नहीं।

यह सब इसलिए कि पीड़ा व्याप्त है। पहले कहा जाता था कि भगवान् सब जगह हैं, फिर पता चला कि कोई स्थान ऐसा नहीं जहाँ आकाश (ईथर) नहीं और अब ऐसा जान पड़ता है कि कोई हृदय नहीं जहाँ पीड़ा नहीं। किसीको इसलिए पीड़ा है कि मेरे पास कार नहीं, किसीको इसलिए कि रेलके फर्स्ट क्लासमें नहीं चढ़ सकता, किसीको इसलिए कि मेरे नगरके भंगी हड़ताल नहीं कर रहे हैं और किसीको इसलिए पीड़ा कि अमुक युवती मेरी ओर प्रेमकी मादक दृष्टिसे नहीं देखती। पीड़ा ही पीड़ा सब ओर है। महाभारत में कथा है कि जब दुर्योधन ने कृष्णको पकड़नेकी आज्ञा दी तो जिधर देखिए उधर कृष्ण ही कृष्ण दिखायी दिये। हमें भी जिधर देखिये उधर पीड़ा ही पीड़ा दिखाई देती है। गठियाकी पीड़ासे लेकर इस आतंक की पीड़ा कि दो खरब वर्षोंमें पृथ्वी सूर्यसे टकरा जायगी हमारे जीवनको वेदना और पीड़ामय बनाये हुए है।

नेताओंका स्कूल

स्वाधीनताका प्रभाव मनुष्यके मनपर पड़े बिना नहीं रह सकता। स्वतंत्र देशके प्राणी स्वतन्त्र ढंगसे सोचते भी हैं। हमारे देशमें भी स्वतन्त्रता प्राप्तिके पश्चात् लोगोंमें बड़ा परिवर्तन हो चला है। नगरोंकी बात तो कीजिये मत गावोंका भी काया पलट हो गया है। उनके विचारोंमें भी नयी तरङ्गें उठ रही हैं। अभी तीन-चार दिन हुए मैं इलाहाबादके एक गाँव में गया हुआ था। संध्याको टहलने निकला तो एक स्थानपर लगभग पचास व्यक्ति एकत्र थे और एक मनुष्य भाषण कर रहा था। सभा समाज आजकल कोई आकर्षक वस्तु नहीं है। गाँवों में भी बड़ी-बड़ी

सभाएँ होती हैं। मैं भी सुननेकी नीयतसे जाकर बैठ गया। किन्तु यह कोई साधारण सभा न थी। पढ़ाई हो रही थी। अध्यापक महोदयने आरम्भ किया, आज मैं आप लोगोंको बताऊँगा कि कपड़ा किस प्रकार पहनना चाहिये जिससे जनतापर अधिक प्रभाव पड़ सकता है। कुरतेका बटन किस प्रकार खुला रहना चाहिये, इत्यादि—

मैंने अन्तमें इन लोगोंकी बड़ी सराहना की और कहा कि यह तो बहुत अच्छा है कि लोगोंको इस प्रकार शिक्षा दी जाती है। उन लोगोंने बताया कि यह नेताओंका स्कूल है। यहाँ नेता बननेकी शिक्षा दी जाती है। मेरी उत्सुकता बढ़ी मैंने पूछा—अभीतक तो जिसे देखो वही नेता बन जाता था। देश विदेशियोंके हाथोंमें था इस कारण विशेष कठिनाई न थी। अब उत्तरदायित्व बढ़ गया है, इसलिए विधिपूर्वक नेता बनाये जायँगे। यह देखिये हम लोगों का पाठ्यक्रम है।

अध्यापक महोदयने मेरे हाथमें छोटी सी हस्तलिखित पत्रिका रख दी। बोले कागजके अभावके कारण यह छप नहीं सकी है। शीघ्र ही पाठ्यक्रम छप जायगा। मैंने उसे पढ़ा। नेता बनानेका पूरा क्रम इसमें बताया गया था। पाठ्य-विधि इस प्रकार रखी गयी थी।

पहली बात यह बतायी गयी थी कि नेता बननेके लिए अधिक विद्याकी आवश्यकता नहीं है। इसके विपरीत जितनी कम शिक्षा हो उतना ही अच्छा नेता मनुष्य बन सकता है। फिर बताया गया था कि कपड़ा किस प्रकार पहनना चाहिये। जनतापर इसका भी प्रभाव पड़ता है कि नेताका क्या पहनावा होना चाहिये। फिर बताया गया था कि चंदा किस प्रकारसे वसूल करना चाहिये। यह महत्वका विषय है। अध्यापक महोदयने बताया कि सभी संस्थाओंका काम चन्देसे चलता है, इस लिए इसके लिए चतुराई का होना आवश्यक है। चन्देका हिसाब नहीं रखना चाहिये। नेता जनताकी सेवा करता है। उसे चन्देमेंसे निजी

व्यय करनेका अधिकार है। चन्देके धनमेंसे सार्वजनिक कार्य भी किया जा सकता है। किन्तु जो व्यक्ति अपना सारा समय लोक सेवामें बिता देता है, उसका अधिकार सबसे पहिले है।

तीसरे प्रकरणमें बताया गया था कि नेता बननेवालेको किसी वस्तुके प्रयोगका निषेध नहीं है। यों तो अपने इच्छानुकूल उसे खाना, पीना, पहनना चाहिये किंतु देशके हित उसे अपना मत·प्रकट करना रहता है। मान लीजिये किसीने बीड़ी बनायी। जनतामें प्रचलन के लिए आवश्यक है कि कोई नेता उसकी सिफारिश करे। नेता सत्यवादी होगा ही। बीड़ी पिये बिना वह कैसे सिफारिश कर सकता है और न सिफारिश करना सार्वजनिक सेवासे मुँह मोड़ना है। इसी प्रकार कोई नया साबुन बना, किसी वैद्यने नयी औषधि बनायी, नया जूता बना, नयी चप्पल बनी, इसपर अपनी राय देनेके लिए तैयार रहना चाहिये।

चौथा अध्याय चुनावका था। नेता और चुनावका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। कांग्रेस कमेटीसे लेकर जिला बोर्ड, म्युनिसिपल बोर्ड, कौन्सिल, असेम्बली जहाँ भी कोई स्थान रिक्त हो नेताको तत्पर रहना चाहिये। देशके हितकी दृष्टिसे उसका कर्तव्य है कि वह चुनावमें लड़े। कोई स्थान हो सभीको इसके लिए तैयार चाहिये। चुनावके युद्धपर ही नेताका अस्तित्व अवलम्बित है। जो चुनावसे भागता है उसमें नेता होनेकी क्षमता नहीं है।

पाँचवे प्रकरण में बताया गया था कि समय समयपर किस प्रकार सन्देश देना चाहिये और पत्रोंमें वक्तव्य प्रकाशित कराना चाहिये। यह कला बतायी गयी थी—और इस कलामें पारंगत होनेकी कला बतायी गयी थी। बताया गया था कि प्रत्येक महान् पुरुष की मृत्युपर, उनको पुत्र होनेपर, उनके यहाँ विवाह होनेपर वक्तव्य और सन्देश छपाना आवश्यक है। कोई घटना हो उस समय भी कुछ छपा देना आवश्यक है

इसपर ध्यान देना आवश्यक है कि मैं क्या कह रहा हूँ। कुछ कहना चाहिये उसमें कुछ अर्थ न भी हो तो पढ़नेवाले अर्थ निकाल लेंगे। वक्तव्य और सन्देशकी यही विशेषता है।

यह संस्था देखकर जी बहुत प्रसन्न हुआ। नगरवालोंको यह सूझ नहीं आयी गाँववाले बढ़ गये। सचमुच इस समय उसी भारतका युग है जहाँ हमारे गाँव के भ्राता रहते हैं। अब वहींसे नेता भारत भाग्य-विधाता होंगे। नगरवालोंको भी चाहिये कि अपने यहाँ ऐसी संस्थाओं की स्थापना करें। नगर-निवासी भी नेतृत्व की कला सीख लें। पर लोग यह समझते हैं नगरवालोंको यह कला जन्म से ही आ जाती है।

स्वाधीनताका मूड

मूड शब्द अंग्रेजीका है, किन्तु हमारी भाषामें वह आगया है। हम बहुधा सुना करते हैं, मैं तो मूड जब होता है, तब लिखता हूँ। इस समय मूड ठीक नहीं है। मूडका क्या अर्थ है, बताना कठिन है। अंग्रेजीमें जो भी इसका अर्थ रहा हो, हिंदीमें तो इसका अर्थ है, मनमाना काम करना। इसी अर्थमें यह प्रयोग होरहा है। इसमें कोई हानि नहीं। जिस शब्दको जिस अर्थमें भी प्रयोग करनेका अधिकार जनताको है। जनताकी ही टकसालमें शब्द ढलते हैं।

मैंने इसी अर्थमें इस शब्दका प्रयोग किया है। जनताके साथ ही चलना आजकल उचित है। नेता भी

जनताकी ही आज्ञा पर चलते हैं। जनताकी भाषा देशकी भाषा होती है, जनताकी मांग देशकी मांग होती है। जनता आज कहे कि यह काम होना चाहिये तो राष्ट्रके नेता वही काम करनेको बाध्य होते हैं।

लोगोंका कहना है कि स्वतन्त्रताकी भावना जनतामें नहीं आयी। देश स्वतन्त्र होगया, किन्तु इसकी महत्ता लोगोंने समझी नहीं। संभवतः यह उन लोगोंका भ्रम है। जनतासे अधिक स्वतन्त्रताकी भावना किसीने नहीं समझी। समझी ही नहीं। उसे, हृदयंगमकी। मेरे एक मित्र हैं, एम. ए. पास इसलिये यह कहनेका साहस किसीको नहीं हो सकता कि उन्हें गंवार कहें। वह लखनऊसे बनारस आये। विना टिकट। बनारसमें टिकट माँगने पर उन्होंने उत्तर दिया, "स्वाधीन देशमें रेल पर चढ़नेके लिये टिकट क्यों माँगा जाता है।" किन्तु संभवतः रेलका अधिकारी विधानसे अनभिज्ञ था और स्वतन्त्रताकी भावना समझ नहीं सका था। उसने दूने पैसे वसूल किये। उन्होंने मुझसे शिकायत की। मैंने उन्हें परामर्श दिया कि नेहरू जीको लिखें। स्वतन्त्रताकी व्याख्या जितनी वह कर सकेंगे मैं नहीं कर सकूँगा।

वह स्वतन्त्रता किस कामकी जिसमें हम मनमाना न कर सकें। ऐसे तो हम अंग्रेजी राज्यमें रहते थे। अनेक बंधन लगे थे हमारे ऊपर। तब और आजमें अंतर क्या रह गया। यदि आज हम सड़कपर चारपाई बिछाकर सो नहीं सकते, लाठी घुमाते चल नहीं सकते, राहमें युवतियोंसे हँसी, दिल्लगी नहीं कर सकते तो स्वाधीनता मिली न मिली, सब बराबर। जब हमें यह अधिकार हो कि जिस दूकानसे जो वस्तु चाहें उठालें और इच्छा हो पैसा दें या न दें तब तो हम समझें कि हमें स्वाधीनता मिली है। दूकानदार अपनी स्वाधीनताका प्रयोग किस प्रकार करेगा, यह कह नहीं सकते। यह उसकी देख-भाल है।

स्वाधीनताका मूड

स्वाधीनताका सबसे बड़ा प्रयोग सार्वजनिक धनके उपयोगमें होने लगा है। एक बार एक आदमीका पर्स सड़कपर गिर गया। घर आनेपर जब उसने देखा तब वह दौड़कर उस ओर जारहा था। लोगोंने पूछा कि क्यों भागे जारहे हो; उसने बताया कि मेरा पर्स गिर गया है। और तो कोई चिंता नहीं है, किन्तु यदि कोई वेदांती देख लेगा तो वह उसे उठा लेगा; क्योंकि संसार की सभी वस्तुएँ उसीकी हैं। हमारे स्वाधीनता प्रेमी भाई वेदांती ही हैं। राष्ट्रकी संपत्ति अपनी ही संपत्ति है। राष्ट्र अपना है। राष्ट्रकी हम इकाई हैं। इसलिये राष्ट्रके धनका उपयोग और उपभोग करनेमें कोई नैतिक बाधा नहीं है। इस प्रकारका उपभोग करना स्वाधीनताके आदर्शोंके अनुकूल भी है। जब हम जिसे चाहें उसे मंत्री चुन सकते हैं, जिसे चाहें उसे गवर्नर बना सकते हैं, तब जिस प्रकार चाहें राष्ट्रका धन भी खर्च कर सकते हैं।

जो जितना ही अधिक राजनीतिक चेतनासे अनुप्राणित है, उतना ही अधिक स्वाधीनताकी भावना उसमें जाग्रत है और यह स्वाभाविक है। हमारा विद्यार्थी समाज स्वाधीनताका सबसे अधिक प्रेमी है। उसके त्यागसे, उसके बलिदानसे, उसकी पीड़ासे स्वाधीनता मिली है। इसलिए स्वाधीनताका सबसे ऊँचा झण्डा यदि वह लेकर चले तो आश्चर्य न होना चाहिए। उसे स्वाधीनता है परीक्षा दे या न दे; विद्यालयोंमें पढ़ने जाय या न जाय। प्रश्न पत्र कठिन है या सरल, उसकी स्वाधीन धारणापर अवलंबित है। यदि विद्यार्थीको वेश-भूषामें स्वतंत्रता है तो कार्यमें भी है।

स्वाधीन देशमें पुरानी मान्यताएँ बदल जाती हैं। पराधीन युगकी मनोवृत्तियाँ समूलनष्ट कर देनी चाहिए।

उनका कुछ भी यदि अवशेष रह गया तो स्वाधीनता पर कलंकका

टीका है। क्रांतिका दूसरा नाम विध्वंस है और विध्वंसके भस्मसे पुन-र्निर्माणको संजीवनी मिलती है। और यह क्रांतिका युग है इसलिये सब पुराने ढंग, पुरानी बातों को राख कर देना चाहिये।

यह हमारा स्वाधीनताका मूड है। संसारके और देश जब स्वाधीन हुए तब उनका क्या हाल था, इतिहासमें नहीं लिखा है। किन्तु हमारे देशके लोगोंने स्वाधीनताका मर्म समझा है, इसमें किसे सन्देह हो सकता है।

आषाढ़स्य प्रथम दिवसे

कहा जाता है इसी दिन यक्षने हाथीके समान मस्त काले बादलोंको देख कर अपनी प्रियतमाके पास अलकामें संदेश भेजा था। कैसा मधुर संदेश था वह कि आजतक उसमें रस भरा है। किंतु युगके साथ बातें बदल गयीं। अब आषाढ़के पहले दिन बादल नहीं दिखायी देता। लूकी लपटें शरीरको ज्वालामयी बनाती रहती हैं। मान्यताएँ बदल गयीं। नया युग ऐसा कुछ लेकर आया कि पुराना मुँह ताकता रह गया। इस लिये नये ढंगसे हम तो आषाढ़का प्रथम दिन उस दिन मानते हैं। जब पहले पहल गगन मंडलमें इंद्रकी सवारी निकलती है। चाहे महीना कोई भी हो।

इसी दिन यक्षने संदेशा भेजा होगा। उस दिन जब पहले बिजली चमकी और पानीकी बूँदें आकाशमें न थम सकीं, मुझसे मिलना उन्होंने आवश्यक समझा। तब मैंने क्या किया। मैंने किसीके पास संदेश नहीं भेजा। उस दरजीके पास भी नहीं जिसने तीन महीनोंसे मेरे कुरतेका कपड़ा रख छोड़ा है। मैंने संदेश भेजा मकानमें। दस बारह सीढ़ियोंके ऊपर। ताजी पकौड़ियाँ बनानेके लिये। मनुने लिखा है, और कई जगह मैंने पढ़ा भी है कि लालच ठीक नहीं। अनुचित है। किंतु वर्षा और पकौड़ियोंका कुछ वैसा ही नाता है जैसा बसंत और पलाशका, मजदूर और हड़तालका, नाच और तालका और विद्यार्थी और नकलका, कभी-कभी घंटों ऐसे समय चिंतित रहता हूँ कि स्वर्गमें पकौड़ियाँ मिलेंगी कि नहीं। मेरा स्वर्ग जाना निश्चित है। क्योंकि काशीके कीट-पतंग, जलचर-थलचर-नभचर नाना सभी स्वर्ग जायँगे। स्वर्गमें अमृत ही मिलता है। शायद। एक मित्र जिसका संपर्क स्वर्गसे है कहते हैं कि अब अमृत में विटामिन मिलाकर उसे अधिक पुष्टकर बना दिया गया है जिसके कारण वह दालदासे भी अधिक जीवनदायक हो गया है। परंतु खाँटी सरसोंका तेल मिलेगा कि नहीं। जैसे मिठाई मुफ्तकी, रुपया पड़ा हुआ, लाइब्रेरी से झटकी पुस्तक अधिक मनमोहक होती है। उसीप्रकार पकौड़ी तेलकी आनन्द दायक होती है।

किसी देशकी सभ्यता साबुनसे नापी जाती है। खानेकी रुचि पकौड़ीसे नापी जाती है। यद्यपि छोले और दही बड़े सुस्वादु भोजनकी श्रेणीमें आते हैं तथापि पकौड़ीका स्थान भले आदमियोंमें भोजनमें वही है जो टाईका सूटपर है। कालिदासके समय पकौड़ीका चलन नहीं था नहीं तो यक्ष

सु प्रत्यग्रैः कुटुजकुसुमै कल्पितार्घायतस्मै

न करके मेघको गर्म गर्म पकौड़ियोंका भोग लगाता। और स्वयं खाता।

पकौड़ियाँ आयीं। पानी टप टप गिर रहा है। गर्म गर्म पकौड़ियाँ तश्तरीमें रखी हैं। उन्हें मुँहमें रखना फिर दाँतोंसे दबाना और फिर जीभसे चारो ओर उसीको दाँतों से परिक्रमा कराना वैसा ही है जैसे दाँते वरजिलकी सहायतासे क्रमशः स्वर्गकी सीढ़ी पर चढ़ रहा है। युरोपमें पुराने कवि नये कवियोंकी इसी प्रकार सहायता करते थे। स्वर्गकी झाँकी करा देते थे। यहाँ यदि तुलसी और सूर नये कवियोंकी चिंता करते रहते और उनके सहायक होते तो ऐसी रचनाएँ क्यों सुनने में आतीं जिनमें पेड़ टहलते हैं, नदियाँ डंड करती हैं और पहाड़ को ज्वर आता है। हमारे कवि, खेद है और हम उनकी आत्मासे क्षमा माँगते हैं, सब काम अपने ही लिए करते थे। तुलसीदासने इतनी बड़ी पोथी रामचरित मानस लिखी स्वान्तः सुखायः। बहु जन हिताय बहु जन सुखाय नहीं लिखा। इसीसे उनकी रचना केवल भारतमें प्रसारित होकर रह गयी। बाइबिलकी भाँति विश्वमें नहीं फैली। यह तो हम लोगों की जबरदस्ती है कि उससे आनन्द उठा लेते हैं। उन्होंने इस नियतसे नहीं लिखा था। रामचरित मानस तो उन्होंने अपने लिए पाठ करनेके लिए रचा था।

पकौड़ियाँ खानी आरम्भ की। पहली पकौड़ीके बाद दूसरी पकौड़ी टेस्ट मैचमें एक सेंचुरीके बाद दूसरी सेंचुरीके समान थीं। जैसे गगन मण्डलसे बूँदे हरहराती दयाके समान बिना प्रयासके गिर रहीं थीं उसी प्रकार आनन्दकी बूँदें गलेमें और गलेसे पेटमें गिर रही थीं। मेरा अनुमान है इसी प्रकार हठयोगमें शीर्षासन करते समय जब गलेके किसी चक्रमें अमृत झरता है ऐसा ही आनन्द आता होगा।

पुराने कवि लिख गये हैं कि प्रेमी-प्रेमिका इस दिन रोती हैं। मेघकी प्रत्येक बूँदसे उनका कलेजा छिलता है। जब सौदामिनी अपनी छटा पृथ्वीपर फेंकती है तब उनके हृदयमें धड़कन होने लगती है।

और जहाँ बादल गरजा वियोगिनीकी वही अवस्था हो जाती है जो परीक्षा-फल प्रकाशित होनेपर असफल विद्यार्थीकी हो जाती है। ऐसे समय हमारी समझमें पकौड़ी ही उन्हें शान्ति दे सकती है। उसासोंके कारण जब मुँह खुले, एक ताजा पकौड़ी उनके मुँहमें डाल दीजिये। थोड़े समयके लिये प्रियतमकी याद वैसे ही भूल जायगी जैसे दूसरेकी पुस्तक लेकर लौटाना भूल जाता है।

पकौड़ीके सम्बन्धमें यह जान लेना भी आवश्यक है कि हमारी संस्कृतिसे उसका कितना सम्बन्ध है। भगवानने गीतामें जब कहा :

रस्या स्निग्धाः स्थिरा हृदया
आहाराः सात्विकाप्रियाः

तब निश्चय ही उनका अभिप्राय पकौड़ीसे रहा होगा।

पकौड़ी रसपूर्ण होती है, स्निग्धाः तेलमें बनती है। और इससे यह भी पता चलता है कि तेलमें ही बननी चाहिये। और हृदयाके दो अर्थ होते हैं। एक तो उसका आकार हृदयके समान होता है दूसरे हृदयके ऊपर उसका प्रभाव स्थिर बहुत देरतक रहता है। सात्विक लोगोंका यही आहार है। कपिल और कणाद, व्यास और वाल्मीकि, वशिष्ठ और विश्वामित्र सोमरसके साथ-साथ इसका सेवन अवश्य करते रहे होंगे। नहीं तो साधारण यव तथा शालिचूर्णसे सांख्य और महाभारत और रामायण जैसे अद्भुत ग्रंथ स्फुटित हों आश्चर्य है।

युगने पकौड़ीकी महत्ताकी ओर ध्यान दिया। आज जितनी पकौड़ी-की दूकानें हैं उतनी सतयुगमें यज्ञशालाएँ न रही होंगी। कभी-कभी प्रबल इच्छा उसे कल्पना करने लगती है कि नभ मण्डलसे बूँदोंके स्थानपर पकौड़ियाँ बरसतीं तो कितना सुन्दर होता। पावसकी महिमा बढ़ जाती। चातकके समान सभी व्यक्ति अपना मुँह खोले आकाशकी ओर टकटकी लगाये रहते और टपाटप उनके मुँहमें पकौड़ी गिरती।

बाहर और भीतर

मनुष्य प्रकृतिकी नकल करनेमें बड़ा सिद्धहस्त है। रात और दिन होते हैं, धूप और छाँह होती है, तब हम भी कभी कुछ और कभी कुछ बन जायँ तो क्या बेजा है? हम एक-से ही कपड़े सदा नहीं पहनते। कुछ लोग घरके भीतर केवल एक गमछा लपेटकर काम चला लेते हैं। परन्तु जब संध्या समय सैर-सपाटेके लिये निकलते हैं, तब चुन्नटवाली धोती और बगलेके पंखपर मुस्करानेवाला कुरता पहन लेते हैं। जिन लोगोंका बड़प्पन दरजीकी दयापर निर्भर रहता है, वह भी तो बाहर साहबके भारतीय संस्करण होते हुए घरके भीतर हार मानकर हिंदुस्थानी ही बने रहते हैं।

यह क्रिया कपड़ोंतक ही सीमित नहीं रह जाती। सुना जाता है, किसी समयमें लखनऊमें 'नवाब' नामकी परंपरा ढोनेवाले निर्धन लोग घरके भीतर यद्यपि दूसरे तीसरे दिन रोटियोंका दर्शन करलेते थे; पर जब अमीनाबादकी सड़कपर निकलते थे, उनकी अचकनकी एक जेबमें बादाम और दूसरी जेब में पिस्ता भरा रहता था।

कट्टर आर्य महाशय पूरनमलका जब आर्यसमाजके वार्षिकोत्सवपर व्याख्यान होता है, तब अपार जनता उमड़ पड़ती है। ऐसा प्रतीत होता है कि, स्वामीजी स्वयं चोला बदलकर खड़े हैं। जिस समय श्राद्ध-का खंडन आप करने लगते हैं, उस समय आपके तर्कोंके सामने कणाद-का मुख फीका पड़ जाता है; परन्तु जब पितृपक्षका पर्व आजाता है, तब घरके पीछेवाले आँगनमें अपने ऊपरकी तेरह पीढ़ियोंके नाम पानी उलीचते हैं।

जमींदार कामरेड दलगंजन सिंहने राजातालाबमें अखिल भारतीय समाजवादी सम्मेलनमें स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया कि, जमींदारी-प्रथा ही देशकी दासताका कारण है। जमींदारोंके लिये आपने जिन शब्दोंका उपयोग किया, उससे हिंदीका एक नया शब्दकोष बन सकता है। लोगोंके दिलमें यह बैठ गया कि, यदि किसी जादूकी छड़ीसे आज रातमें सारे जमींदारोंका निर्वाण हो जाता, तो कल उषाकी मुसकानके साथ-साथ स्वाधीनता देवी हमारे देशमें विरही युवकके खारे मोतीके समान टपसे टपक पड़ती। किसानोंके रक्त-शोषणके संबंधमें जो आपने कहा, उसे सुनकर तो कब्रमें लेनिनकी हड्डियां उठ बैठीं। उसीके दूसरे दिन निरू चमारकी चार विस्वे ऊखकी फसल आपने कटवा ली; क्योंकि दो रुपये लगानके वाकी थे। विधवा रधियाकी गाय नीलाम करवा दी; क्योंकि उसने कामरेड साहबसे दो रुपये जो उधार लिये थे। उसका सूद अठारह रुपये हो गया था, जो अभीतक नहीं दिया गया था।

बाहर और भीतर

मुंशी पलकधारी लाल वर्मा समाजसुधारपर जब भाषण देने लगते हैं, तो रानडे, राममोहनराय और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर स्वर्गसे झाकने लगते हैं। उनका व्याख्यान स्त्रियोंकी स्वतन्त्रतापर सुनिये। जान पड़ता है कि, सुनते सुनते कमला क्षीरसागरसे भागनेवाली ही हैं, अन्नपूर्णा अब अलकामें रह न सकेंगी और सरस्वती ब्रह्माको अलटिमेटम देदेंगीं। परंतु उनकी श्रीमतीजीने कभी अपने घरके बाहरका भूगोल समझा ही नहीं। सभाके मंचपर और सोशल कानफरेंसके अधिवेशनोंमें महिलाओंके प्रति उनके हृदयमें कितना सम्मान है, कितना आदर है, कितनी शिष्टता है, देखिये। यदि मुंशीजीके समान प्रत्येक प्रांतमें एक एक व्याख्याता भी होता, तो भारतका बेड़ा पार हो जाता। महिलाओंकी पूजाके ही लिये उनके शरीरके ऊपर मस्तक है, उनकी प्रशंसाके लिये ही उनके मुखमें जीभ है। हाँ, यदि उनकी पंद्रह-वर्षीया कन्या घरके वातायनसे झाँक ले, तो उस दिन उसके शरीरपर हल्दी-चूनेकी मालिश आवश्यक हो जाती है। यदि उनकी स्त्रीने अपने मनसे दो पैसेकी नाशपाती ले ली, तो उस वाणीकी वर्षा होने लगी, जिसे सुनकर भटियारिन-समुदाय संयमकी शरण लेनेके लिये बाध्य होता है। और वही हाथ छड़ीका प्रयोग भी श्रीमतीजीके ऊपर उतनी ही सरलता से करता है, जितनी सरलतासे महिला-समाजके उत्थानके लिये लेख लिखनेके लिये।

हमारे समाजमें ऐसे कितने ही चित्र हैं, जिनके दो स्वरूप हैं। इसीसे संभवतः हम प्रतिदिन स्वतन्त्रताके निकट चले आरहे हैं।

[यह लेख स्वतन्त्रता संग्रामके पहले लिखा गया था]

सोमवार

पता नहीं कब पत्रा बना, कब कलेण्डर बना। यदि उस समय मैं होता और लाइसेन्स का प्रबन्ध न होता तो कहींसे पिस्तौल लेकर उस व्यक्तिको बड़ी सरलतासे साकेत लोक दिखा देता, जिसने सोमवारका दिन बनाया। रविवारके बाद सोमवार उसी भाँति है जैसे रसगुल्लेके बाद निबौरी। ठण्डई हो जिसमें कसेरू, बादाम और गुलाबजल, हलकी-सी विजया, उसे पान करनेके पश्चात् कुनैन मिक्सचर पीना पड़े तब वैसा ही अनुभव होगा जैसा रविवारके बाद सोमवार पड़ जानेसे होता है।

रविवारके दिन यह चिन्ता नहीं रहती कि उस समय उठना है जब

ताम्रचूड़ अपनी चोटी हिला-हिलाकर सूर्यके सारथीसे कहता है कि घोड़ेको चाबुक लगाओ; या कागदेव तस्करोंको चेतावनी देते हैं कि जो कुछ लेते बना उसे लेकर साम्यवादके प्रासादकी नींवमें एक ईंट डालकर चलो ! अब बारह घण्टेके पश्चात् फिर अवसर मिलेगा। घड़ी मित्रोंसे उधार लिए रुपयोंके समान भूल जाती है। काम-काज का कोई ध्यान नहीं रहता। और क्यों रहे। बहुत दिन हुए 'बाइबिल' में पढ़ा था कि ईश्वरने ६ दिनोंतक संसारके निर्माण करनेमें परिश्रम किया और सातवें दिन थकान मिटाई। और आवश्यक भी था, बड़ी-बड़ी नदियाँ खोदना, ऊँचे-ऊँचे पहाड़ उठाना, मनुष्य बनाना, गोजर बनाना, केकड़ा बनाना, तितली बनाना, अजगर बनाना, कितना परिश्रम करना पड़ा होगा, ईश्वर था तो क्या थकान तो आ ही गयी होगी। रविवारको बीस-बाइस घण्टे सोया होगा। फिर दूसरे सोमवारको उसने क्या किया, नहीं लिखा। क्योंकि संसार तो बन ही चुका था।

मनुष्यके लिए भी इतवारका दिन वरदान ही है। जब चाहे तब उठिये, जब चाहे तब स्नान कीजिये। जब तक चाहे तबतक गप मारिये। किन्तु दूसरे ही दिन सोमवार ! चलिए तड़के उठिये। कालेजके प्रोफेसर हैं तब सबेरेसे ही भूत चढ़ा है कि लेक्चरमें यह बात होनी चाहिये। अध्यापक हैं तो यह देखना है कि डायरी लिखी या नहीं। दफ्तरके बाबू हैं तो सबेरेसे ही सोच रहे हैं कि आज कार्य अधिक होगा। ६ बजनेके पहले घर लौटनेकी आशा नहीं है। यों तो नित्यका ही झगड़ा है किन्तु रविवारके बाद जो कठिनाई है वह यदि शारदा सदा लिखें तब भी नहीं लिखी जा सकती—यों तो परिश्रमसे पैसा पैदा करनेवालोंके लिए काम करना ही पड़ता है। किन्तु ६ दिनोंकी पिसाईके पश्चात् एक ही रविवार खल जाता है। कमसे कम दो रविवार तो होना ही चाहिये, तब कुछ पुनर्नवताका आनन्द मिले। जब ईश्वर-सा महान् एक दिन छुट्टी ६ दिन

कार्य करनेके बाद लेता है तब मनुष्यको जिसे दो ही हाथ-पाँव हैं कितने दिनोंके अवकाशकी आवश्यकता है ? साधारण गणितसे जाना जा सकता है।

मैं और लोगोंकी बात नहीं कहता किन्तु मेरे कानोंमें जब 'सोमवार' शब्द पड़ता है तब कुछ वैसी ही भावना होती है जो मछली देखकर किसी परम वैष्णवको होती है ! मनस्थिति उस रोगीकी भाँति हो जाती है जिसके सम्बन्धमें डाक्टर या वैद्य निश्चय नहीं कर पाते कि क्या रोग है ! इससे अच्छा तो यह होता कि रविवार होता ही नहीं। प्रतिदिन दिनभर काममें लगे रहते। छुट्टीका कुछ ध्यान ही न होता।

मैंने अपने कमरेसे कलेण्डर हटा दिया था जिससे सोमवारका ध्यान न आये किन्तु सफलता नहीं मिली। सवेरा होते ही किसीने कानमें सूचना दे दी कि आज 'सोमवार' है ! उसी समयसे कालेजका चित्र सामने आ गया। रविवारकी रातकी मस्ती थी वह लोप हो गयी, नशा उखड़ गया। जिन लोगोंने कभी बढ़िया कसेरूकी या सन्तरेकी भाँग छानी है या स्काटलैण्डकी किसी प्रधान कम्पनीके कादम्बका सेवन किया है वे जानते होंगे कि दो चार घण्टेके बाद सब नशा उखड़ जाता है तब क्या हाल होता है। नशेमें जबतक आप रहते हैं आप अफलातून हैं, नीरो हैं, सिकन्दर हैं, शाहजहां हैं, कुबेर हैं, इन्द्र हैं, किन्तु उसके पश्चात् यही जान पड़ता है कि इस भय से कहीं पत्नी तलाकके लिए हाईकोर्टमें प्रार्थना न दे दे आप घर से भागकर किसी उद्यानके बेंचपर बैठे भविष्यके जीवनका कार्यक्रम बना रहे हैं। रविवार यदि हृदयमें उमंग, मनमें उत्साह, नसोंमें चंचलता, आँखोंमें नशा लाता है तो सोमवार हृदयमें रक्तके चापकी कमी मनमें असफल विद्यार्थीकी भावना, नसोंमें तिरस्कृत प्रेमीका निरुत्साह और आँखोंमें मोतिया विन्दकी सफेदी लाता है।

सोमवार

दूसरोंकी बात तो नहीं कहता किन्तु मुझमें तो ६ दिनतक कार्य करनेकी शक्ति इसलिए रहती है कि सोमवारके दिनके बाद रविवार आनेवाला है। सोमवारसे ही रविवार कब आयेगा सोचा करता हूँ—जिस भाँति नया प्रेमी इन्तजारमें आँखे फाड़े बैठा रहता है। नित्य सबेरे कलेण्डर देखा करता हूँ, कभी कभी तो मैंने दो एक ज्योतिषीसे परामर्श किया कि जिस भाँति हिन्दी पक्षमें तिथिकी हानि होती है, दिनकी हानि क्या नहीं हो सकती। एक बार तो एक महान ज्योतिषोसे कहा कि आप कृपया सूर्य सिद्धान्त, खण्ड-खांड्यक, बृहतसंहिता, सिद्धान्त शिरोमिणि आदि ग्रन्थोंको ध्यानसे अध्ययन करके देखें कि सम्भव है कि दिनकी हानियाँ होती हों। उन्होंने समझा कि मेरे मस्तिष्कका कोई भाग लोप हो गया है तबसे यह बात किसीसे नहीं कहता किन्तु देवताओंको मनाया करता हूँ कि किसी भाँति सोमवारके तीन ही चार दिन बाद रविवार होता तो बड़ा अच्छा होता। मिठाई भी मान दी है किन्तु अभी सुनवाई नहीं हुई। वहाँ भी बहुत देर लगती है। देशी सरकार की भाँति !

जनेऊ

याद नहीं पड़ता है, प्रागैतिहासिक कालकी घटना मालूम पड़ती है जब मुझे एक पण्डितने कुछ संस्कृतके वाक्य पढ़कर एक पीले रंगका जनेऊ पहना दिया था। संस्कृतमें उसने क्या कहा मैंने समझा नहीं, और न समझने की कोशिश की। डाक्टर राबिन्सन क्रूसो और सर वेस्टएंड वाच डी० लिट० के कथनानुसार संस्कृत मृतभाषा है। इसलिये मैंने इसे पढ़ना उचित नहीं समझा। जबसे होश संभाला है तबसे इसपर बहुत विचार करता रहता हूँ कि आखिर इन 'धागों' का क्या प्रयोजन है। नेकटाईका प्रयोग कुछ समझमें आता है। आजकलकी बेकारीकी अवस्थामें यदि आत्महत्या करनी हो तो नेकटाईसे अधिक सहायक मिलना असंभवसा जान

पड़ता है। दूसरे यह उन लोगोंका पहनावा है जो हमारे ऊपर हुकूमत करते हैं। हमारे अन्नदाता, मालिक, सरकार सभी कुछ हैं। सुनते है नेकटाईसे सुन्दरता भी बढ़ जाती है। परन्तु यह जनेऊ, जिसे परिष्कृत भाषामें यज्ञोपवीत कहते हैं, किस काममें आता है।

पहले जब लोगोंके पास कुछ धन-दौलत, आभूषण इत्यादि रहे होंगे तभी इसका आविष्कार संभवतः हुआ होगा। सन्दूकों और आलमारियों में संपत्ति रखकर उनकी तालियाँ अपने पास रखनेके लिये इससे अधिक कामकी और कोई वस्तु ठीक नहीं पड़ती। परन्तु आज सोना सपना होगया और पढ़े लिखे लोगोंके घरमें डिग्रियाँ और सर्टीफिकेट और जेंटिलमैनोंके सूटकेसोंमें सूटके बन्डलके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। ऐसी अवस्थामें कुंजीकी ही आवश्यकता नहीं, तो कुंजी लटकानेके लिये किस वस्तुकी आवश्ककता है। मैंने अपने जीवनमें तलवार नहीं देखी है। कुछ तो योंही तलवारका नाम सुनकर भय मालूम पड़ता है, दूसरे जब सरकारने उसे हम लोगोंके पास न रखनेके लिये आज्ञा करदी है तब अच्छा ही समझकर ऐसा किया होगा। जब यह हाल है तब मैं समझता हूँ कि मेरा पुत्र जिसे बहुत दिनोंसे पैदा होनेकी मैं आशा कर रहा हूँ, यदि अपने जीवनमें कुंजी न देखे तो आश्चर्य नहीं। मेरे पास कोई ऐसी वस्तु नहीं, जो तालेमें रखी जा सके। तो तालीकी आवश्यकता ही क्या है। आगेकी संतानको तालीकी भी आवश्यकता न होगी। मैंने कई ऐसे लोगोंसे भी पूछा जिन्हें लोग विद्वान कहते हैं। इसमें एक सज्जन लगे समझाने कि यह तो ऋणकी याद दिलाती है। मैंने चट एक हाथसे उनका मुँह बन्द कर दिया। बोला—ऋणका नाम मत लाजिये। भारतवासी बेचारे सदासे ऋण ही चुकाते चले आये हैं। कोई समझदारीकी बात कीजिये। एक सज्जनने वेदकी दुहाई दी। वेदसे अधिक प्रामाणिक मैं एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटा-

निका समझता हूँ। वह चार खंडोंमें है। यह उन्तीस खंडोंमें है। फिर वेदके लेखकका पता नहीं और एन्साइक्लोपीडिया अंग्रेजोंकी लिखी है, इतना ही प्रमाणके लिये पर्याप्त है। इसमें कहीं जनेऊका नाम तक नहीं मिलता।

मसोलिनीका कहना है कि यह पहले पहल 'जेनोआ' के लोगोंने पहनना आरम्भ किया। इसीसे यह जनेऊ कहलाया। वहाँ इमीमें लोग क्रास लटकाते थे। मैं भी समझता हूँ कि इस कथनमें निन्नाबे फी सदी सच्चाई है। वहाँसे मार्को पोलो भारतवर्षमें लाया होगा। हमारे एकके सुयोग्य डायरेक्टर महोदयने कहा है कि फिजूल लोग विश्व-विद्यालयोंकी प्रयोगशालाओंमें समय बरबाद करते हैं। ठीक भी है। उन्हें इन बातोंका पता लगाना चाहिये जेनोआ से कब जनेऊ भारतमें आया? कौन लाया? कैसे लाया?

महात्माजीने जनेऊ उतार दिया है। बहुत संभव है उन्होंने यही सोचा हो कि यह विदेशी संस्कृतिकी वस्तु है। जो हो इससे हमारी हानि बहुत हो रही है। जनेऊ पहन कर हम 'स्मार्ट कालर' की कमीज नहीं पहन सकते। वह भीतरसे झाँकता है जो असभ्यताका चिह्न है। जनेऊ न होता तो द्विज और शूद्रोंका एक भेद तो तुरन्त मिट जाता। जितना ही कम भेद भाव हो उतनी ही आसानी मेल-मिलाप में हो सकता है।

यह दूसरी बात है कि कभी पोथी सीनेके लिये या कनकौआमें जब डोरे कम हो जाँय तब जनेऊ सहायक बन जाता है, परन्तु यह बहुत थोड़ा लाभ है।

पैसा व्यय करके कंधा छिलवाना कुछ बुद्धिमानी तो नहीं मालूम होती।

रेलगाड़ी

रेलगाड़ी स्वयं लेख है यह सब लोग जानते हैं। यदि नहीं जानते हैं तो जानना चाहिये। इसमें बड़ी और छोटी लाइनें हैं, पाइन्ट हैं। और लेख के लिए चाहिये क्या। रह गयी बिचारोंकी बात। हमारे जितने लेखक हैं, कम हैं, विशेषतः जो ऊंचे दर्जे के हैं अपने दिमागोंमें विचारोंको ठूँसे रहते हैं परन्तु मैं जब मेला रेलमें मुसाफिरों को देखता हूँ, जब वह उसी प्रकार उसमें भरे जाते हैं जैसे बोरेमें रूई तब तो मेरी समझमें आजाता है कि लेखकोंके दिमागमें से कैसे विचार भागनेको उतावले होते होंगे। इतिहासमें ब्लैकहोलकी बात पढ़ाई जाती है। लोग कहते हैं कि वह क्लाइवकी कल्पना है। हो सकती है। परन्तु मेलेके समय हरेक डब्बा ब्लैक होल बन जाता है इसमें सन्देह नहीं?

रेलके बाबू लोग ऐसे समय कम्पनीको आशीर्वाद देते हैं। ईश्वरको

यह पहलेसे मालूम था कि रेल कम्पनियोंमें गाड़ियोंकी कमी होगी। यदि इतना भी उसे नहीं पता तो वह ईश्वर न होकर कुछ और होता। इसीलिये उसने माघ मेला ऐसा पर्व जाड़ेकी ऋतुमें रखा कि बेचारे गरीब मुसाफिर कम्बल और रजाईके खर्चसे बच जाँय। और वह इस प्रकार भर दिये जाते हैं कि यदि किसीका कोई अंग टेढ़ाहो, बेकायदे हो तो वह कस कर ठीक हो जाता है जैसे फरमेंके भीतर जूतेकी बिगड़ी शकल ठीक हो जाती है।

इसकी जिम्मेदारी रेलवे कर्मचारियों पर तो है नहीं। उन्हें खाली टिकट काटनेकी और लाइन क्लीयर करनेकी और तार देनेकी शिक्षा दी गयी है। रेलके डब्बे बनाना उन्होंने सीखा नहीं।

मेरी समझमें तो रेलके यात्रियोंको रेल कम्पनियों और हमारी दयावती सरकारको भी धन्यवाद देना चाहिये। आजकल हमारे लिये रेलवेकी ओरसे जो सुविधाएँ दी गयी हैं उससे देशमें वीरता, संगठन और देशप्रेम जाग्रत होता है। बहुतसी रेलें ऐसी हैं जो समय पर नहीं खुलतीं। अब बतलाइये ऐसे पतिके लिये जो अपनी श्रीमतीके शृंगारके लिये दो घंटे तक तांगाका पहिया पकड़े घरके दरवाजे पर खड़ा हो यदि ट्रेनटाइम पर छूट जाय तो हृदय पर कितनी चोट लगेगी। या यदि गाड़ी ठीक समय पर छूटने लगे तो उन बरातियोंकी क्या दशा होगी जिनकी बिदाई धीरे धीरे बिवाहके बाद होती है। नवाब साहब साढ़े तीन घण्टेमें चूड़ीदार पायजामा पहनते हैं। उनको लखनऊसे कानपुर जाना है। अब यदि गाड़ियाँ ठीक समय पर छूटने लगे तो नवाब साहबकी यात्रा तो नहीं हो सकती चाहे और जो हो जाय। कांग्रेसने इस ओर ध्यान नहीं दिया नहीं तो वर्किंग कमेटी बधाईका प्रस्ताव पास करती कि गाड़ियाँ समय पर नहीं छूटती हैं इसमें देशका बड़ा हित है।

बहुधा समाचार पत्रोंमें शिकायतें सुनने में आती हैं कि अमुक

रेलवे स्टेशन पर मुसाफिरखाना नहीं हैं। पानी पीनेका प्रबंध नहीं है। पूरियाँ अच्छी नहीं मिलतीं। मुसाफिर खानेकी आवश्यकता? पानी और धूपसे बचाव? यदि पानी और धूपमें भी भारतवासियोंको खड़े होने की आदत नहीं है तो वह बिलकुल निकम्मे हैं। यदि पहले किसीने पानीसे बचनेके लिए मुसाफिरखानेकी बात सोची भी होगी तो राम गढ़ कांग्रेसके बाद फिर न सोचेगा। यदि पानीमें खड़े होनेकी आदत लोगोंमें होती तो डेढ़ दिनोंमें कांग्रेसका अधिवेशन समाप्त न हो जाता इसी प्रकार कौन जाने जिन्नासाहबकी बुलाहटपर किसी साल कांग्रेसका अधिवेशन सिंधके रेगिस्तानमें न हो जाय। यदि मेरा बस चले तो मैं तो जितने मुसाफिर खाने हैं ढहवा करके कपासकी खेती करा दूं।

मैं तो रेलवेकी जितनी बातें देखता हूँ सभीमें रेलवे अधिकारियोंकी दूरदर्शिता और विवेक दिखायी पड़ता है। जैसे बहुतसे स्टेशनों पर रातमें अंधेरा रहता है। जब गाड़ी डिस्टेंट सिगनल पर पहुँचती है तब दीप टिमटिमाना आरंभ करते हैं। अंधेरा, स्टेशनों पर, गाड़ीकी इन्तिजारी, 'रोमांस' के लिये इससे बढ़कर और कोई वातावरण हो नहीं सकता। रेलवेकी किफायत, गरीब चोरों उचक्कोंकी रक्षा, युवकों युवतियोंके प्रेमालाप का शुभ अवसर। अब और क्या चाहिये। हमारे हिंदुस्तानमें नियम है कि सुंदर बालकको जब अच्छे अच्छे कपड़े पहनाते हैं, मेला तमाशामें ले जाते हैं तब सब शृंगार करके माथे पर काजलका टीका लगा देते हैं। जितना ही सुन्दर बालक होता है उतना ही माथा पर बड़ा काला टीका होता है! इसी प्रकार छोटी लाइनमें ड्योढ़े दर्जेमें टाटकी गद्दी लगायी जाती है। इस प्रकार भारतीय संस्कृतिकी रक्षा हमारी विलायती कंपनी भी करती है। क्या हमें इसका गौरव नहीं होना चाहिये।

[यह लेख स्वतंत्रताके पहलेका है]

चूल्हा

चूल्हा गृहस्थीके लिये उतना ही आवश्यक है, जितना विद्यार्थियोंके लिये फाउन्टेनपेन, सूटके लिये नेकटाई, सौन्दर्यके लिये लिप-स्टिक, अंग्रेजोंके लिये भारतवर्ष और ब्राह्मणों के लिये यजमान। परन्तु यह है क्रांतिका युग। फाउन्टेनपेनका स्थान सिगरेट लेने लगा है। नेकटाईको हटाकर लेडी कालरकी कमीज लोगोंने पहनना आरंभ कर दिया है। लिप-स्टिकके विरोधमें जहाद खड़ा होरहा है। अंग्रेजोंको हटानेके लिये प्रयत्न हो रहे हैं और यजमान ब्राह्मणोंकी आवश्यकता उसी प्रकार अब नहीं समझते, जैसे भोजनके समय कपड़ा उतारनेकी आवश्यकता नहीं समझी जाती।

उसी प्रकार चूल्हा भी अब घर-गृहस्थीका विशेष अंग नहीं समझा जाता।

कोई समय था जब चूल्हा घरका, परिवारका एक बहुत आवश्यक अंग समझा जाता था। एक लोकोक्ति बन गयी। जिसके घरमें चूल्हा न जले, वह बड़ा ही अभागा समझा जाता था।

चूल्हा जलानेकी एक कला थी। सब उस कलामें पारंगत नहीं हो सकते थे। वे ही कोमलांगिनी महिलाएँ, जिनका पाँव मखमलपर चलनेसे छिल जाता था, अथवा गुलाबकी कलियोंके चटकनेसे जिनके सिरमें दर्द हो जाता था, चूल्हेकी दो हज़ार डिगरीके तापके सम्मुख आसन मारकर बैठ जाती थीं और ताबड़तोड़ रोटियाँ सेंकती चली जाती थीं और वह भी कब? जब जेठकी दोपहरीमें श्रीमानजी ऊशीरकी टट्टियोंमें सिकुड़े बैठे हैं, बाहर घरके हनूमानजीके पिता सौ मील प्रतिघंटा की गतिसे चले जा रहे हैं और इतनी उष्णता लिये कि, दर्शनमात्रसे हरियाली बेचारी स्वयं मुरझा जाय और मरीचिमाली किरणोंकी ज्वाला-माला लिये प्रलय करके तीसरे नैनकी भाँति सबको अतन ही करना चाहते हैं।

परन्तु वह कोई युग था;—जैसे महेंजोदरोका युग, हज़रत मूसाका युग अथवा सुकरातका युग।

अब तो हमारे देशकी वीरांगनाएँ हाकी भी खेलती हैं, टेनिस और बैडमिंटन भी और जमनास्टिकमें छलांगे भी मारती हैं। कहनेका तात्पर्य यह है कि, शरीरके सगठन और स्वास्थ्यकी ओर विशेष ध्यान है, फिर भी चूल्हेके निकट जाना उनके लिये उतना ही कठिन है, जितना जिन्ना साहबका कांग्रेसतक पहुँचना। वह बम फेंक सकती हैं, सत्याग्रहके लिये धरना दे सकती हैं और हवाई जहाजके 'पाइलट' बन सकती हैं; परन्तु जीवन-नौकाके लिये चूल्हाको अनावश्यक समझती हैं। यह हमारे राष्ट्रके लिये सौभाग्यका चिह्न है। देशकी जाग्रतिका

द्योतक है। बुद्धिमानी उसीको कहते हैं, जिससे आवश्यक और अनावश्यक बातोंका ज्ञान हो जाय। वह हमारे देशकी आधी जनताको ज्ञात हो गया है।

अब आप देखिये। चूल्हेके धुएँके सामने बैठकर कितनी हानियाँ होती हैं। पहला प्रहार नेत्रोंपर होता है। शरीरका वही अंग जिसमेंसे यौवन झाँकता है, जो हृदयकी भूमिका है, जो प्रेमका थरमामीटर है, जो वेदनाके गानका रेडियो है, जो पीड़ाकी वीणा है और जो स्नेह-देवताके आवागमनके मार्गका फाटक है। कौन आत्म-सम्मानी प्रेमी इसे हानि पहुँचायेगा ? माना कि, चक्षुओंकी रक्षाके लिये चश्मा मौजूद है, फिर भी धुएँके प्रयोगसे बड़ी-बड़ी सेनाएँ ध्वंस हो जाती हैं, तब ये ही आँखें जो 'तनिक कंकड़ीके पड़े बेचैन' हो जाती हैं, कहाँतक इस आक्रमणको सहन कर सकती हैं ?

फिर और देखिये। जो समय भोजन बनानेका अर्थात् चूल्हेके पास बैठनेका है, वही रेडियो सुननेका, सिनेमा देखनेका, कैरम खेलनेका, पार्टीमें जानेका, झंडा-अभिवादनका और जलसोंका होता है। इन सभी कार्योंसे देशकी उन्नति, राष्ट्रका निर्माण और वसुधाका कल्याण होता है। चूल्हेके पास बैठना क्या ? पेट भरनेका एक साधन मात्र। उसके लिये तो बासे हैं, होटल है, रेस्तराँ हैं।

क्रांतिकी जननी अग्नि है। अग्निकी ही भट्ठीमें क्रांतिके यंत्र ढला करते हैं। इसलिये चूल्हेसे बढ़कर क्रांतिके लिये और कौन स्थान उपयुक्त होगा ? हमारे गार्हस्थ्य-जीवनकी क्रांति चूल्हेसे आरम्भ होती है। इस सम्बंधमें जिन्हें भ्रांति हो, वे सत्रहवीं शताब्दिके व्यक्तियोंकी पांतमें शांत होकर बैठ जायँ।

[स्वतंत्रताके पहले लिखा गया]

नोटपर चोट

बगलमें बैठी प्रेमिका बात करते करते यदि आपको एक चांटा लगाकर भाग जाय, बढ़िया-बढ़िया भोजन करते समय घरकी छत परसे आपकी थालीमें चूहा गिरकर नाचने लगे, लाट साहबकी दावतमें आप जा रहे हों और मोटरसे उतरते समय मोटर-की किसी नोकसे फँसकर आपकी पतलूनका पृष्ठ भाग एक फुट फट जाय और आपकी छोटी अंग्रेजी कोट ढक न सके तो आपके मनमें कैसी कैसी भावना तरंगे उठने लगेंगी। बड़े साहससे, बड़ी धूर्ततासे, सच्चाईका बलिदान करके, बेईमानीकी देवीको प्रतिष्ठित करके लोगोंने रुपये एकत्र किये। युद्धका संसारपर जो कुछ भी

प्रभाव पड़ा हो अनेक लोगोंके लिये वह स्वर्णयुग था। इसलिये कि उनकी बुद्धिके कारण उनके घरपर सुवर्णकी बरसात होने लगी। जो चतुर थे उन्होंने ठीक स्वर्णके टुकड़े तिजोरियोंमें बन्दकर बनस्पति घीका पराठा खाकर मूछोंपर ताव दिया। कुछ लोगोंने समझा कि अंग्रेजी सरकारकी साख है, सोना खरीदनेमें संदेह हो सकता है, श्रीमतीजी कह सकती हैं कि पचास साठ भरीकी मैं भी हकदार हूँ। उन्होंने हजारके, पाँच हजारके, दस हजारके नोट ही चुप-चापसे मोड़-मोड़कर रख लिया।

सरकारी कर्मचारी भी थे। वेतन थोड़ा भी बहुत किन्तु अवसर बहुत ही अनुपम। जैसे कोई अफीमची मलाईके गड्ढेमें गिर पड़े। इधर हाँथ फेंका तो मलाई, उधर हाथ गया तो मलाई और डूबने लगा तो भी मलाई ही मुँहमें गयी। वहीं कुछ अवस्था सरकारी कर्मचारियोंकी थी। राशनिंग विभागके इंसपेक्टर, सप्लाई विभागके अधिकारी, अंग्रेजी शासनकी सर्वेसर्वा पुलिस विभाग, सेना विभागके अधिकारी, डिपटी और कलक्टरोंने उसी प्रकार रुपया बनाया जैसे प्रयागमें त्रिवेणी तटपर इलाहाबादी हज्जाम बाल बनाते हैं। बंकमें जमा करना उनके लिए वैसा ही था जैसे कालराके रोगीको पुलाव खिलाना। बहुतसा सोना खरीदना उनके लिए उतना ही संदेहात्मक था जितना किसी बारवाले रेस्तराँमें बैठकर चाय पीना। बड़ेबड़े मूल्यका नोट ही उनका सहारा था जैसे मुसलिम लीगका सहारा है अपढ़ मुसलमान जनता। ऐसे लोगोंके लिए मकान बनवाना, या बाग बगीचोंका खरीदना भी कम सन्देह जनक न होता! अतः नोट भुनाकर रख लेना ही उनके लिए सरल था। बस तिजोरीमें नोट भर लिए और भविष्यके सुंदर सपनोंके लिए चैनका जीवन बिता रहे थे जैसे युवक द्विरागमनकी प्रतीक्षामें ससुराल जाता है।

बड़े लाटकी कार्यकारिणीमें भी बुद्धिमान लोग हैं, यह मानना पड़ेगा।

इनकम टैक्सकी आमदनी बहुत चुरायी गयी। इन लोगोंने भी समझा जैसे कुनैनपर शक्कर लपेटी जाती है, चोर बाजार बंद करनेकी भी घोषणा की गयी। भारत सरकारको भी भारतका हित सूझा। बिलाई भी वैष्णव धर्ममें दीक्षित हुई। सूझ बिलायतकी थी या देशी—भगवान जाने। एकाएक दिल्लीसे सूचना निकली कि हजार, पाँच हजार, दस हजारके नोटोंका चलन आजसे बंद ! बंकोंके पास जितने हों वह उनकी सूची दें। जिनके पास ऐसे नोट हों वह इस-इस प्रकार अमुक तिथितक भुना सकते हैं।

कितनोंका दिल बैठ गया, कितनोंको टाइफाइड हो गया और कितनोंके घर कई दिनोंतक चूल्होंमें अग्निदेवका प्रवेश नहीं हुआ। रिजर्व बंक और इंपीरियल बंकपर भीड़ चली जैसे कांग्रेसका जलूस चलता है। आदमीपर आदमी ऐसे गिरते थे मानों वियोगीके आँसू गिर रहे हैं। एक चोर बाजार बंद करनेका प्रबंध हुआ दूसरा आरंभ हुआ। दलाल लोग बड़े-बड़े नोट ले बाजारमें पहुँचे। अमुक डिपुटी साहबके यहाँसे, अमुक ठीकेदारके यहाँसे हजार-हजारके नोट साढ़े नौ सौ, नौसौ और आठ-आठसौ तक बिकने लगे। कलकत्ते और बंबईमें छिपछिपकर मुनाफेपर नोट बिकने लगे जैसे चोरी-चोरी कोकीन बिकती है, दोनोंका लाभ ही हुआ। लेनेवालेने सोचा हजारका कागज आठसौमें बिक रहा है दोसौ मारा। मेरे यहाँ तो करोड़ोंका कारबार है खप जायगा। बेचनेवालेने सोचा कि मुफ्तका माल है आठसौ ही सही। सरकारको आशीर्वाद देते हुए आठसौ ही जेबियाया।

कानूनी लोगोंने अदालती कारवाई भी की। राजनीतिक समाजमें दो दल हो गये। एक सरकारकी प्रशंसाका गीत गाने लगा कि बहुत अच्छा किया। दूसरी गालियाँ देने लगा कि सरकार निकम्मी है। महा-

त्माजीने कोई वक्तव्य नहीं दिया ! हिंदू-सभाकी दृष्टिसे यह घटना कैसी रही यह भी पता नहीं । मुसलिमलीग मौन है ।

उन लोगोंसे हमारी पूर्ण सहानुभूति है जिनके यहाँ यह नोट केवल दीवारमें चपकानेके लिए रह गये हैं । वह काशीके कलाभवनमें भेज दें तो अच्छा होगा । थोड़ेसे अपने पास भी रख लें जिनसे उनके पुत्र पौत्र, प्रपौत्र दर्शन करें कि हमारे पिता और पितामह इतने भाग्यवान थे । हमारी उनसे भी सहानुभूति है जिन्होंने सौ रुपयेके नोट भी अस्सीमें भुना दिये ।

[यह लेख स्वतंत्रताके पहले लिखा गया था]

पेट

जिस समय ब्रह्माने मानवका शरीर बनाया या जिस किसीने बनाया था, क्योंकि किसीने बनाते देखा नहीं है, मनुष्यके साथ बड़ी निर्दयता-पूर्ण हँसी उसने की। यदि इसके पहले उसने और प्राणियोंका निर्माण किया था तो उसे अनुभव हुआ ही होगा। ब्रह्मा अनुभवसे न सीखें यह तो माननेको जी नहीं करता है। चार सिर होंगे तो चारो खोपड़ीमें भेजा भी होगा। और उसमें बुद्धि भी होगी। ईश्वर शैतानको दण्ड भी दे चुका था कि तुम सर्प होकर पेटके बल चलोगे। जिसका परिणाम यह हुआ कि केवल शैतान ही नहीं सर्पके रूपमें पेटके बल चलता बल्कि शैतानके

और सम्बन्धी, मामा मामी, चाचा चाची, फूफा फूफी जैसे घड़ियाल और मेढक और छिपकिली भी पेटके बल चलती हैं। यह दण्ड इसीलिए कि पेटको दण्ड देना था। शिशु भी पेटके बल रेंगता है कि जीवनमें सदा स्मरण रहे कि सारे खुराफातोंकी जड़ यह पेट है इसे स्मरण रखना। जनरल डायरने इसीलिए पंजाबमें लोगोंको पेटके बल रेंगनेके लिए कहा था। इस पेटकी सृष्टि क्यों की गयी यह विडम्बना ही है। यदि पेट न बनाया गया होता तो हानि क्या थी। हृदय रक्त संचालनके लिए था ही। फेफड़े रक्त शोधनके लिए थे ही। मैं यह नहीं मान सकता कि मनुष्यका निर्माण करनेवाला इतना मूढ़ है कि कोई ऐसा यन्त्र या अवयव शरीरमें न बना देता जो रक्त बनानेकी सामग्री न जुटा देता। देवता लोग सूँघकर तृप्ति कर ही लेते हैं। इसलिए दण्ड देनेके लिये ही पेट बनाया गया।

बहुतसे अवयव तो आवश्यक जान पड़ते हैं। आँख न होती तो हम सुन्दरताकी ओर कैसे निहारते। आँखके ही कारण सीताजी रामको वर सकीं नहीं तो इतने राजा आये थे न जाने किसकी गरदनमें जयमाला पड़ जाती। आँख न होती तो ताजमहल कैसे बन पाता। आँख न होती तो रामचरित मानस न लिखा गया होता क्योंकि सूरदास तो कूपमें गिर गये इसलिए भगवानने उन्हें ऊपर खींच लिया। तुलसीदास तो यमुना या गंगामें गिर गये होते। यहाँ बह जानेका डर था। आँख न होती तो रत्नावलीकी लात तुलसीदासको लगती नहीं और रामचरितमानस लिखा नहीं जाता। इसलिए आँखकी उपयोगिता समझमें आती है। इस प्रकार कान, नाक, हाथके सम्बन्धमें बहुत कुछ कहा जा सकता है। किन्तु पेटकी उपयोगिता क्या है।

कुछ लोग कह सकते हैं कि पेटके ही कारण बड़े-बड़े कारखाने चल रहे हैं; बड़े-बड़े राज्य चल रहे हैं; युद्ध होता है और उसके लिए

गोला-बारूद, अस्त्र-शस्त्र बनते हैं; पाँच हजार मरते हैं तो पचास हजार मौजसे जीवन बिताते हैं। किन्तु इसपर विचार नहीं किया गया कि यदि पेट न होता तो क्या होता। क्या उस समय अधिक अन्न उपजाओकी चिन्तामें मंत्री लोग दुर्बल होते; कण्ट्रोलकी व्यवस्था करनेके लिए इतना कष्ट सहकर मोटरकार या वायुयानपर मन्त्रियोंको सारे देशका दौरा करना पड़ता। पेट न होता तो क्या बाढ़में किसीको चिन्ता होती। फिर मनों अनाज एकत्र करके डेढ़सेर बेचनेका लालच किसीको होता?

सवेरा हुआ और चाय या टोस्ट या हलवा या गुड़की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। यह पेटकी ही लपेट है और कुछ नहीं। प्रेमकी शिक्षा लेकर बड़ी-बड़ी संधियाँ और बड़े बड़े राष्ट्राय कार्य डिनरकी मेजपर या चायकी टेबुलपर ही तो होते हैं। पेट ही वह राह है जिसके द्वारा लोग ऐसे ऐसे स्थानों पर पहुँच जाते हैं जहाँ मेरी पहुँच नहीं होती। और फिर जो कार्य गीता, याज्ञ-वल्क्यस्मृति चाहे पाराशर स्मृति द्वारा भी वर्जित है वह भी हो जाता है। संसारका जितना लूटमारका इतिहास है वह पेटका इतिहास है। महात्मा गांधीने कहा कम खाओ उपवास करो, पेटपर विजय प्राप्त करो, बुद्ध, ईसा सबने यही कहा—पेटपर अंकुश लगानेकी सलाह इन लोगोंने दी किन्तु अंकुशके वश होनेवाला यह नहीं। यह ससीममें असीम है। छायावादका प्रतीक है, रहस्यवादका रूपक है; गागरमें सागर है। भिड़न्त इसके कारण होती है, महन्त इसके कारण बनते हैं, रटन्त इसीके लिए की जाती है, यह अनन्त, इसकी शक्ति अनन्त है।

वैज्ञानिकोंने बहुतसे ब्रह्माके कार्योंमें सुधार किया जो कुछ उनके सर्जनमें त्रुटि रह गयी थी उसका संस्कार किया; किंतु ऐसी कोई वैज्ञानिक प्रक्रिया नहीं निकाली जिसमें पेटकी आवश्यकता न रहे। सोचिये कि पेट नहीं है तो आपको इसकी आवश्यकता नहीं है कि आज गेहूँ नहीं

मिला कहींसे जवका ही प्रबन्ध करना चाहिये। आप प्रातःकालसे रात नौ बजेतक वृक्षके नीचे बैठे भैरवीसे लेकर भीमपलासी तकके तान उड़ा रहे हैं आप प्रेमी हैं तो निरंतर प्रेमका वाक्य बनानेमें लगे हैं। इस बातकी चिंता नहीं है कि भोजन ठण्ढा हो जायगा। वियोगी हैं तो पत्रोंपर पत्र तावपर ताव यदि कागज मिलता चला जाय लिख रहे हैं। किसी प्रकार का व्यवधान उपस्थित नहीं होनेवाला है। कोई विचारोंका तारतम्य तोड़नेकी बात नहीं है। बाढ़ आ गयी है। गंगाका पानी दो सौ तीन सौ फुट चढ़ रहा है। घर गिरनेकी चिंता थोड़ी हो सकती है नहीं तो लहरोंकी क्रीड़ाका आनन्द, भँवरके नर्तनका सुख लूट रहे हैं। यह चिंता तो नहीं है कल क्या होगा। भविष्यकी चिंताकी कल्पनाका न होना ही स्वर्ग है। पृथ्वीपर सब कुछ है। बिजलीका पंखा भी है, रेफरेजरेटर भी है, एयरकंडीशन भी है किन्तु इस पेटसे बचनेका कोई उपाय नहीं हैं। विज्ञानकी सारी खोज इसके सामने वैसे ही बेकाम हैं जैसे अलकतरा के सामने साबुन या ब्लेकमार्केटवालोंके सम्मुख ईमानदारी।

यह पितृपक्षके पन्द्रह दिन इस बातको सूचित करते हैं कि मृत्युके पश्चात् भी पेटसे जी नहीं छूटता। बुभुक्षासे पीड़ित पितृ लोग धरतीकी ओर आँख लगाये रहते हैं जैसे नारियलका फल धरतीकी ओर लटका रहता है। सुनता हूँ किसी युगमें भारतवर्षमें ऐसे तपस्वी रहते थे जो छ सौ सालतक भोजन बिना रहते थे। वह पेटकी चिंतासे मुक्त थे। डी० लिट, और पी० एच० डी० की डिगरी लेनेके लिए खोजमें जो लोग अपनी जिन्दगी बरबाद करते हैं उन्हें चाहिये कि उसी रहस्यका पता लगायें जिससे वह महात्मा पेटसे मुक्त थे। संसारका सारा वैषम्य दूर हो जायगा।

चायका प्याला

कपड़ा नापनेका साधन गज होता है, धरती नापनेके लिये फीता होता है, स्वास्थ नापनेके लिये सीनेकी चौड़ाई होती है और सभ्यता नापनेके लिये चायका प्याला होता है। जिस देशमें, जिस प्रदेशमें, जिस परिवारमें और जिस घर द्वारमें जितनी चाय पी जाती है, वह उतना ही सभ्य माना जाता है। कलियुगका सोम है यह और वैसा ही इसका सम्मान है वैसी ही इसकी शान है। बच्चोंके लिये जैसे टूवाय है, मरणासन्न प्राणियोंके लिये गाय है वैसी ही समाजके लिये चाय है। राष्ट्रपतिसे लेकर रिक्शावाले तक इसके प्रेमी हैं। आज हमारे देशमें नगरोंकी तो बात क्या उन

स्थानोंमें जहाँ रेलके धुएँसे आक्रमण नहीं किया है जहाँ अभी ऐसे भी लोग हैं जिन्हें पता नहीं कि भारतके प्रधान मंत्री-जवाहरलाल नेहरू हैं कि चरचिल वहाँ भी चाय चलने लगी है । प्यालेमें न सही गिलासमें ही सही । और बारहों मास न सही जाड़ेमें ही सही । मित्रोंके स्वागतका इससे सस्ता, इससे सुन्दर इससे अधिक सहानुभूति पूर्ण सहृदयताके रससे परिपूर्ण और कोई पदार्थ या पेय अभी सुननेमें नहीं आया है । जो खानेकी वस्तुएँ ठोस होती हैं उनमें कठोरता है, चाय तरल है हृदयको द्रवीभूत करती है । यद्यपि पुराने लोगोंने जिनमें स्वार्थी मनुष्योंकी संख्या अधिक थी, जैसे सब बढ़िया वस्तुओंको अपने लिये रख छोड़ा था चायको भी अपना ही पेय बनाया था । यह चेष्टा की थी कि स्त्रियाँ इसका उपयोग न करें इसी लिये लड़कियोंको बे-टी पुकारना आरंभ कर दिया था । किन्तु उनकी चालाकी चली नहीं ।

यह चाय कहाँसे आयी कम लोग जानते हैं । इसकी उपजका इतिहास करूणा पूर्ण है । बहुत दिनोंकी बात है बुद्ध पैदा नहीं हुए थे, महावीर तीर्थंकरका नाम लोगोंने नहीं सुना था । एक युवक, पवित्र प्राणीको तपस्याकी सूझी । उसके गुरुने बताया कि सोलह सालतक यदि बिना सोए, गरमी-जाड़ा-धूप-वर्षाका आक्रमण शरीरपर सहते दिनमें सूर्यकी ओर देखते और रातमें ध्रुवकी ओर निहारते प्राणायाम करते रहोगे तो सोलह वर्ष समाप्त होते ही तुममें यह शक्ति आ जायगी कि जब जो कहोगे हो जायगा । यह शक्ति साधारण नहीं हो सकती । और कौन नहीं पाना चाहेगा । आसामकी एक पहाड़ीपर, पत्थरकी एक समथल चट्टानपर युवक बैठ गया । दिन बीते रात बीती, मास बीते, वर्ष बीते, जाड़ेकी शीतलता ग्रीष्मका आतप, वर्षाकी मूसलाधार झड़ियाँ युवकने उसी प्रकार सहीं जैसे प्रेमिकाके पुष्पोंका प्रहार प्रेमी सहता है । स्वर्ग-देवता त्राहि-त्राहि करने लगे । देवियाँ स्वर्गके वातायनसे चुपके-चुपके

झाँक-झाँक कर नैनोंसे मोती बिखरातीं। विश्वकी सारी व्यवस्था उलट जानेका भय होने लगा। इधर युवक जिस आसनपर पहले दिन बैठा उससे एक सूत भी इधर-उधर न हुआ। पन्द्रह वर्ष बीत गये। लक्ष्मण चौदह वर्ष तक नहीं सोये थे। इन्द्र घबड़ा गये। देवताओंकी कानफरेंसे होने लगीं। अंतमें यमके छोटे भाईने कहा:—जब सब ओरसे असफलता मिल गयी, रंभा और मेनका इस युवकको विच-लित न कर सकीं, देवताओंकी मायाका प्रभाव इसके ऊपर वैसा ही पड़ा जैसा नारदकी वीणाका राजपुतानेकी भैंस पड़ता है। स्वर्गका सारा विज्ञान, मनोविज्ञान व्यर्थ हो गया तब कोई शक्ति सफल होगी इसमें संदेह है। फिर भी मैं एक चेष्टा करता हूँ। यदि सफल हुआ तो ठीक नहीं तो हम सब लोगोंको अपना डेरा-डंडा उठाकर नवीन सृष्टि करनी होगी।

पन्द्रह वर्ष तीन सौ चौंसठ दिन बीत गये। एक रात शेष रह गयी। युवकके मनमें यह बात धँसी कि बारह घंटे बाद मैं ईश्वरको भी चुनौती दे सकूंगा। एक घंटा उषाके आगमनको रह गया यमराजका सहोदर युवककी पलकोंपर बैठ गया। युवक उस गाढ़ी निद्रामें डूबा जिसके लिये तिजोरी रखनेवाले तरसते हैं। एक घंटेके बाद युवककी नींद खुली। तपस्या टूट चुकी थी। सब किया-धरा मिट्टीमें मिल गया। उधर स्वर्गमें अप्सराएँ मणिपुरी, तथा भरत नाट्यमकी एकसे एक कला दिखला रहीं थी, एरावत और उच्चैश्रवाकी कुश्ती हो रही थी, कार्तिकेय सेना लेकर खड़े थे और विष्णु भगवान सलामी ले रहे थे। युवकको बहुत ग्लानि हुई। उसने अनाटमी और फिजियालोजी पढ़ी नहीं थी, उसने सोचा नींदका कारण यही बरौनियां हैं। निराशामें उसने दोनों आँखोंकी बरौनियां नोच-नोच कर फेंक डालीं। उसी दिन जब मेघको देखकर यक्षको यक्षिणीकी सुधि आयी और आषाढ़के प्रथम दिवस मान-

खूनका पहला पानी बरसा उन बरौनियोंमें अंकुर फूट पड़े। पौधे हुए, उनकी पत्तियोंकी चाय बनी। दाहिनी आँखकी बरौनीसे ब्रुकबांड, बांयीसे लिपटन, जहाँ दोनों मिलीं उनसे लपेचू तथा और-और ब्लैंड बने। उनके पीनेसे नींद नहीं आती यह उस अपूर्ण तपस्वीका अभिशाप है। किन्तु तपस्याका कुछ प्रभाव तो होना ही चाहिये। भगवानकी भांति चाय सर्वव्यापिनी हो गयी।

बाथरूम

पहले तो मैं शीर्षकके लिये क्षमा चाहता हूँ। क्योंकि मुझे भय है, कि यह हेडिंग देखकर कहीं विशुद्ध हिन्दी के पक्षपाती गालियोंसे मेरा स्वागत न करने लगें! मुझे स्नानागार लिखना चाहिये था। यों तो पहले भी अंग्रेजी शब्दका प्रयोग हिन्दी लिखने वालोंके लिये उतना ही अनुचित था जितना परम वैष्णवके सामने बकरा काट कर रख देना। लेकिन आज जब अंग्रेज भारतसे चले गये, भारत से ही नहीं, ईरान, मिस्र, सभी स्थानों से उनका झंडा उखड़ गया तब अंग्रेजी शब्दोंका प्रयोग करना भाषाद्रोह, राष्ट्रद्रोह, देशद्रोह, सभी समझा जायगा किन्तु करूँ क्या ? बाथ-रूम शब्दमें मानवताका इतिहास निहित है

एक बार आगराका किला देखने गया। वहाँ शाहजहाँका बाथ-रूम देखा। शाहजहाँका नाम लिया जाय और मुमताजकी स्मृति न आये! यह तो उसी प्रकार है जैसे काशीका नाम लेते ही भांगका रूप नैनोंके सामने नाचने लगता है। और मुमताज महलकी याद आते ही हृदयमें गुदगुदी, मनमें रोमांस, बुद्धिमें वैभवका संसार घूमने लगता है! मैं कल्पना करने लगा, यहाँ गुलाबजलके हंडे तथा सुगन्धियोंके पिटारे रखे जाते होंगे। प्रसाधिकाएँ मुमताज बानुके कोमल अंगोंको धवलतर और धवलतम बनाती होंगी। यहीं शाहजहाँ अपनी दाढ़ी बेसनसे मलता रहा होगा। उस समय गोदरेज नम्बर वन या प्रिफेक्ट या मैसूर संदल सोपका जन्म नहीं हुआ था। इच्छा हुई एक बालटी पानी मिल जाता तो मैं भी वहीं अपने ऊपर उड़ेल लेता! यह भावना क्यों आयी, कह नहीं सकता। संभव है कोई फ्रायडियन ग्रंथि कहीं दबी हो। शाहजहाँके बाथरूमको मैंने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और घर लौटा।

रोमन बाथरूमका इतिहास तो रोमन लोगोंके जीवनका सुंदर इतिहास है। रोमन साम्राज्ञी क्लियोपेट्राके लिये कई मन भेड़का विशुद्ध दूध आता था तब वह नहाती थी। पता नहीं दूधमें मिश्री भी डाली जाती थी या नहीं। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि दूधसे नहाने से उसका शरीर दूधके ही समान था। बिटामिन युक्त भी रहा हो तो आश्चर्य नहीं। हमारे राधा और कृष्ण माखन और दहीकी हांड़ी फोड़ते रह गये, यह न हुआ कि दूधसे नहाते या माखनकी मालिश करते! रोमन बाथरूमका वर्णन घासलेटी साहित्यका अच्छा उदाहरण हो सकता है—हम लोगोंकी दृष्टिसे। किन्तु रोमन लोगोंके लिये तो यह मनोरंजन, मोद, महत्ता तथा मानसिक आनन्दकी बात थी। शरीरकी पीड़ा हरी जाती थी; मनको सुख मिलता था।

हमारे देशमें बाथरूमका आनन्द कहाँ मिलता है ! गंगा, जमुना या नर्मदामें गोता मारने वालोंके लिये अथवा कुएँके जगत पर बैठकर खोपड़ी पर पानी उड़ेलने वालोंके लिये बाथरूमका आनन्द हो ही क्या सकता है ! उसकी कल्पना करना भी उनके लिये कठिन है। हमारे देशमें कुछ ही सज्जन ऐसे भाग्यवान हैं जिन्हें बाथरूमका आनन्द मिल सकता है।

सच्ची स्वतन्त्रता देशमें नहीं, मनमें नहीं, बाथरूममें होती है। वहाँ आप सब कुछ कर सकते हैं। यों आपसे कहा जाय कि एक गाना गाइये। आप कहेंगे कि मैं और गाना ! आपको संकोच होगा, लाज लगेगी, शायद बुरा भी लगे ! किन्तु बाथरूममें आप खयालसे लेकर भीमपलासी तक और कव्वाली से लेकर 'आवारा' के गीत तक गाते हैं। और ऐसी-ऐसी धुन निकालते हैं कि तानसेन भी आपके सम्मुख नतमस्तक हो जाते, यदि होते। और यदि कहीं जाड़ेका मौसम रहा तब तो सूर और मीराके भजन और ठुमरी और दादरा सब जलकी धारके साथ-साथ निकलते चलते हैं। आप रेडियो बन जाते हैं और जलकी धार स्विच। सच्ची जल तरंग तो यही है कि जलकी तरंगों और स्वर-लहरीमें एकरूपता हो। अद्वैतकी भाँति दोनों एक हो जाय !

× × ×

इंगलैण्डमें एक बार एक भोजमें आम रखा गया। बहुतसे लोग जानते नहीं थे कि किस प्रकार इसे उदरस्थ किया जा सकता है। जो अधिक चतुर थे उन्होंने बाथरूमकी शरण ली। जो चीज यों न खायी जा सके वह बाथरूममें खायी जा सकती है !

और गरमीके दिनोंमें तो बाथरूमका वही महत्व है जो पितृपक्ष में गायका। वहाँ जा कर बैठ जानेसे सब संताप मिट जाते हैं। कठिनाई यही है कि साधारणतः घरमें दो बाथरूमसे अधिक नहीं होते और मिनिस्टरीकी भाँति सबकी आँख उसीकी ओर होती है। यदि

आपके बाथरूममें टब है तब तो आप उसीमें पड़े रहिये। कुछ समय तक जैसे भैंसें गड़हीमें पड़ी रहती हैं (या यदि आप पौराणिक घटनाओं के प्रेमी हैं तो) जिस प्रकार क्षीरसागरमें भगवान विष्णु पड़े रहते हैं! यदि टब नहीं है अथवा आप उसे अपनी संस्कृतिके विरुद्ध समझते हैं तो नलकी टोंटी खोल दीजिए और अपने सिरपर धार गिरने दीजिये। आप अपनेको शंकरसे कम नहीं समझेंगे। समझेंगे कि शिवकी जटामें गंगाजी आकाशसे गिर रही हैं!

× × ×

मोहंजोदड़ो की खुदाईसे तो पता चलता है कि सिन्ध वाले बाथरूमके शौकीन थे। अनेक बाथरूम मिले है। किन्तु और पहलेका पता नहीं चलता। कृष्ण तो जमुनामें नित्य स्नान करते थे और राधा भी वहीं जाती रहीं होगी। दशरथके यहाँ कोपभवन तो था, पर बाथरूम था कि नहीं यह अभी पता नहीं। यदि होता तो उर्मिला पेड़के नीचे घूम-घूम कर क्यों कलपती ! बाथरूममें बैठकर लोटा-लोटा सरजू-जल अपने कोमलकृश विरहतापसे तपित गोरे-गोरे गातपर डालती जाती और नये-नये टेकनीकसे छन्दोंको गढ़ती और गाती जाती। जो भी हो, यह खोजका विषय तो है ही! और हिन्दीमें अभी डाक्टरीके लिये क्षेत्र विस्तृत है।

आज जब विश्वकी सभ्यता बहुत बढ़ गयी है, हर एक घरमें बाथरूम का होना आवश्यक है; और प्रत्येक व्यक्तिको अपने जीवनका कुछ अंश नित्य वहाँ बिताना भी आवश्यक है। सभ्यताका मापदंड बाथरूम है। कविने कहा ही है :—

'ग्रेट बनना हो तो एक ब्यूटीको अपने साथ लो,
मौज चाहो; बैठ करके टबमें दिन भर बाथ लो।

और यह बाथरूमके बिना हो नहीं सकता।

बनारसी रिक्शा

इस युगकी देन हाइड्रोजन बम, एटम बम, रमन एफेक्ट और एक्सरे, स्पुटनिक ही नहीं है, रिक्शा भी है। जैसे मुकदमें विधानसे चले वैसे ही रिक्शे जापानसे चले। कलकत्ता होते हुए बनारस पहुँचे। रिक्शेने बनारसमें इक्केको उसी प्रकार हटाया जैसे तुरकीके सुलतान गद्दीसे हटाये गये। बनारसकी विशेषता हो गयी सड़ककी पटरीपर दूकानें और सड़क पर रिक्शे।

पहले लोग पालकीपर सवार होते थे किन्तु मानवताने उचित न समझा कि मनुष्य मनुष्यके ऊपर होकर यात्रा करे। तीर्थकी बात दूसरी है। बदरीनाथ, केदारनाथकी यात्रामें लोग डांड़ीपर सवार होकर

चलते हैं। देवताका दर्शन करने चले तब किसी प्रकारका पाप या हिंसाका प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि उद्देश्य धार्मिक होता है। सभ्यताके विकासमें मानवताकी परिभाषा बदली। मनुष्य द्वारा चलाये जानेवाले रिक्शेपर सवार होना अनुचित नहीं समझा जाता। इक्केकी सवारीसे अधिक शिष्ट समझा जाता है।

पशुओं द्वारा खींची गयी सवारीपर चढ़ना पशुओंपर अत्याचार है। मनुष्य तो सहनशील व्यक्ति है। मैं एक सज्जनको जानता हूँ जिन्होंने एक गाय पाल रखी है। उन्होंने अपने नौकरको इसलिये बहुत मारा क्योंकि गायको थोड़ी देरतक उसने धूपमें बाँध रखा था। गायको इतनी पीड़ा नहीं पहुँचानी चाहिये थी। पंडित और पुजारी, पाँववाले और पंगु, पढ़े और अपढ़ रिक्शा पर चढ़ते हैं। उसी प्रकार रईस और रंक, रोगी और नीरोग, रसिक और रूक्ष, रामवाले और रहीमवाले सभी निस्संकोच रिक्शेकी सवारी करते हैं और जैसे गायकी पूँछ पापियोंको वैतरणीसे खींच ले जाती है उसी प्रकार रिक्शेवाले अपनी सवारियाँ खींच ले जाते हैं। कभी-कभी जब ऐसी सवारी बैठती है जिसके पेटके घेरे और लम्बाईमें बराबरीका अनुपात रहता है तब तो हमें विश्वास हो जाता है कि हमारे मूषक महाराज अवश्य ही उसे बड़ी सरलतासे खींच ले जाते होंगे जिसके सुमिरनेसे सब सिद्ध हो जाता है।

रिक्शेकी एक और विशेषता है। इसपर मनुष्य बैठ सकता है, इसपर सीमेण्टके बोरे लादे जा सकते हैं, अनाजका बोरा लादा जा सकता है, परवल-पपीता, कोहड़ा-कटहल, तरबूज-तरोई, नेनुआ-निबुआ, लौकी-लिसोड़ा, कंडा-कोयला, घास-फूस सभी लादे जा सकते हैं। बकरा-बकरी भी रिक्शेपर मुझे देखनेका अवसर मिला है। वास्तवमें जनताकी सवारी यही जान पड़ती है।

हमारे महर्षि द्रष्टा होते थे इसमें सन्देह नहीं। पंडित-प्रवर-पितामह पाणिनीने आजसे ढाई हजार वर्ष पहले ही चार शब्द एक ही तुकपर बनाये थे। चारोंका अभग्न सम्बन्ध है। ऋक्षा-परीक्षा-भिक्षा-तितिक्षा। ऋक्षाका अर्थ ही है फटा, विभाजित, टुकड़े टुकड़े। यदि आप संभलकर रिक्शेपर नहीं बैठे तो आपका शरीर अवश्य ही ऋक्ष हो जायगा। परीक्षा तो दोनोंकी है। खींचनेवालेकी परीक्षा उस समय है जब रिक्शा ऊँचाईपर चढ़ने लगता है। वनस्पतिसे पुष्ट कलेजा रिक्शेको ऊपर खींच लेता है, यह बताता है कि वनस्पतिमें विटामिन पर्याप्त मात्रामें है और घासका घी आदमीको घोड़ेकी शक्ति (हार्स-पावर) प्रदान कर देता है। और आपकी परीक्षा उस समय होती है जब कई रिक्शों और गाड़ियोंके बीचसे आपका रिक्शा निकल भागनेकी चेष्टा करता है। काशीके लोग बहुत भाग्यवान् हैं इसीसे प्रमाणित होता है कि एक वर्षमें केवल चार पाँच आदमियोंका हाथ पाँव टूटता है। जिसे भिक्षा नहीं मिल सकती वही रिक्शा खींचता है। तितिक्षा तो रिक्शा खींचनेवालेका गुण ही है। सबेरेसे संध्या और संध्यासे सबेरेतक जाड़ा गर्मी-बरसात इनका पाँव चला करता है। यह दूसरी बात है कि कभी कोई किसीका सामान लेकर सिकन्दर या महमूद गजनवीका सूक्ष्म रूप प्रदर्शित कर दे। यों तो आई० ए० एस० और पी० सी० एस० के कर्मचारियों पर भी गबन और चोरीके मुकदमें चला करते हैं।

रिक्शेवालोंकी कृपासे बहुतसे भोजनालय काशीमें खुल गये। जो मांस फेंक दिया जाता अथवा जो आटा पशुओंको खिलाया जाता उसके परोठे और वही मांस पकाकर संध्याको इन होटलोंका कारोबार चलता है। एक यह भी कारण है काशीमें नशाबन्दी सरकारने नहीं की। रिक्शावालोंकी थकान मिटानेके लिए सरकारी मधुशालामें उतारी हुई वारुणी आवश्यक है। इसी वारुणीका आचमन कर वह इन्हीं

होटलोंमें महाप्रसादका भोग लगाते हैं और इसके बाद जब वह रिक्शा चलाते हैं तब आप सवार हों तो वही आनन्द आयेगा, जो जेट प्लेनपर अन्तरिक्षमें उड़नेका आता है। इस अवस्थामें कहीं दो रिक्शेवाले एक दूसरेके आगे पीछे हो जायँ तब आपको इतिहासका वह पृष्ठ याद आ जायगा जब बाबर और इब्राहीम लोदी पानीपतके ऐतिहासिक मैदानमें आमने सामने आये थे।

सुना एक बार एक रिकशेवाला किसी रोगसे पीड़ित होकर किसी डाक्टरके पास गया तो उन्होंने उसे घोड़ा अस्पताल जानेकी सलाह दी। डारबिनके पुराने सिद्धांतके अनुसार पशुसे विकसित होते-होते मनुष्य बना। किंतु विज्ञानमें तो उलट-फेर होता रहता है। सम्भवतः विकास अपनी चरम सीमाको पहुँच गया और अब मनुष्य पुनः पशुकी ओर गतिवान् है। रिकशा खींचनेका क्रम नीचे उतरनेकी पहली सीढ़ी है।

काशीके रिकशेकी और भी विशेषता है। उसपर बैठनेकी पटरी उन्हीं लोगोंके लिये बनी है जिन्होंने या तो तपस्याकी धूपमें अपने शरीरको अच्छी तरह सुखा लिया है अथवा प्रणयगंगामें स्नान करते-करते मजनू के समकक्ष हो गये हैं अथवा जिनका शरीर चरक और सुश्रुतके उत्तराधिकारियोंकी कृपासे इस योग्य बन गया है कि सूक्ष्म शरीर धारण करने में विशेष कठिनाई उसे न हो। यदि रिकशेपर सवार आप क्रमशः नीचे की ओर खिसकते नहीं जा रहे हैं तो अवश्य ही आपकी जड़ता प्रशंसनीय है। नयी धोती या पायजामा पहनकर जब आप बनारसी रिकशेपर बैठने चलते से तब यदि सावधान न रहें तो दूकानदारके दर्शन दूसरे ही दिन फिर करने पढ़ते हैं।

यह तो देखा गया कि एक्केवाले, गाड़ीवाले, बैलगाड़ीवाले, मोटर वाले रिकशेसे घृणा करते हैं। पता नहीं बैल और घोड़े इनसे घृणा करते

हैं कि नहीं। प्राणिशास्त्रके पण्डित पता लगा सकते है। इतना तो है कि रिकशेसे नगरपालिकाको रुपये, निम्नश्रेणीके होटलोको ग्राहक, साइकिलके चोरोंको सुविधा , कुछ लेकर शीघ्रतासे भागनेवालोंको अवसर मिलता है। इन सब बातोंसे आर्थिक संघटन सबल होता है, सबके लिए काम मिलता है, बेकारीके अन्धकार में प्रकाश फैलता है, गांव वाले नगरका आनन्द उठाते हैं, सभ्यताका विकास होता है।

आलू ज़िन्दाबाद

ताजमहल है; किन्तु यदि न होता तो संसारकी कुछ क्षति न होती। कोहनूर है, मूल्यवान है, प्रकाशवान है; किन्तु यदि न होता तो संसारकी हानि न होती। हाँ, कुछ लोगोंकी यह धारणा है कि उसके कारण राज्योंमें परिवर्तन होता रहा है; सो, वह न होता और अधिक-से-अधिक यह होता कि अभी तक भगवान कृष्णके वंशज भारत पर राज्य करते होते, क्योंकि कुछ विद्वानोंका कहना है कि उन्हींके पास पहले-पहल यह कोहनूर था। उनके पास कहाँसे आया, इतिहास इस सम्बन्धमें मौन है और खोजकी भी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यह डाक्ट्रेटकी थीसिसका विषय नहीं बन

सकता। मनुष्यने बहुत-से आविष्कार किए, कम्यूनिज्मसे लेकर स्पुट निक तक। इनमें कितने ऐसे हैं जिनका पता न लगा होता तो संसारके लिए अच्छा ही होता। जन्तु-जगत, वनस्पति-जगत और खनिज-संसारमें नित्य नई खोज होती चली आ रही है। यह खोज शायद कई करोड़ वर्षोंसे हो रही है। किन्तु यदि पूछा जाए कि इतने दिनोंकी खोजमें सबसे बड़ी खोज कौन थी तो सहसा किसीको कुछ कहनेका साहस न होगा। यदि हम ईश्वरकी खोजको छोड़ दें तो हम समझते हैं कि इस विश्वपर मनुष्यकी सबसे बड़ी खोज आलू है। अभी राकेट दूसरे संसारोंमें पहुँच नहीं सका है, किन्तु जब पहुँचेगा तब पता लगेगा कि और चाहे जिन बातोंमें मंगल और शनि, बृहस्पति और चन्द्रमा पृथ्वीसे भिन्न हों यदि वहाँ कोई जीवधारी रहता है तो आलूका सेवन अवश्य करता होगा, यह मेरी धारणा है। जो लोग अध्यात्म-विद्याके पंडित हैं वे इस बातकी जाँच भी कर सकते हैं, क्योंकि विमानोंके पहुँचनेके पहले उनकी आत्मा वहाँ पहुँचकर और उन लोकोंका निरीक्षण कर लौट आ सकती है।

विज्ञानने जोड़-घटाकर अनेक वस्तुएँ अपनी प्रयोगशालामें बनाई। मधु बनाया, कृत्रिम घी और कृत्रिम दूध बनाए, कृत्रिम चावल भी बनाया किन्तु कृत्रिम आलू न्यूटनसे लेकर आइन्स्टोन तक कोई नहीं बना सका। यह विज्ञान पर उसकी विजय है और उसकी महत्ताका विज्ञापन है। जैसे आँख बनाई जा सकती है, किन्तु कटाक्ष नहीं बनाया जा सकता, जैसे हृदय बनाया जा सकता है, पर उसमें प्रेमकी हिलोरें नहीं उठायी जा सकतीं, जैसे अधर बनाए जा सकते हैं, किन्तु उसमें हृदयको बांध लेनेवाली रेखाएँ नहीं बनाई जा सकतीं, उसी प्रकार मेरा विश्वास है कि कृत्रिम स्टार्च बना लेने पर भी मनुष्य आलू नहीं

बना सकता और मेरा तो यहाँ तक विचार है कि ईश्वर भी चाहे तो कोई दूसरी वस्तु उसका स्थान लेनेवाली नहीं बना सकता।

हमारी खोजका परिणाम है कि समुद्र-मंथनके पश्चात असुर लोग अमृतका घट लेकर उसी प्रकार भागे जैसे गत युद्धमें अंग्रेज लोग डनकर्कसे भागे थे। तब जहाँ-जहाँ घड़ेसे छिटककर सुधाकी बुंद धरती पर गिरीं, वे वहीं आलूका बीज बन गई। उस घटमें ढकना नहीं था, यह तो मानना ही पड़ेगा, क्योंकि किसी पुराणमें ढकनेका वर्णन नहीं आया। अर्वाचीन इतिहासके पढ़े-लिखे इसका विरोध करेंगे कि आलू तो आयर्लैण्डसे आया है, किन्तु उन्हें इस बातका पता नहीं कि अयर्लैण्डमें कहाँसे आया। यदि इतिहासकी सीमा अट्ठारहवीं शती ही होती तब यह माना भी जा सकता था, किन्तु इतिहास इससे भी पुराना है। आयरलैण्ड नाम अंग्रेजोंका दिया हुआ है, किन्तु उसमें 'आयर' शब्द स्पष्ट ही 'आर्य' का अपभ्रंश है और इसके साक्षी मैक्समूलर, जेस्परसन और तारापुरवाला हो सकते हैं। किसी समय जब अर्जुनने अमेरिकामें जाकर अपना विवाह किया था तब अर्जुनके कई दूरके भाई-भतीजे आयरलैंडमें गए। जो-जो भारतसे जहाँ-जहाँ गया आलू तो लेता ही गया, क्योंकि जानेवाले अधिकांश महर्षि लोग थे और इनका भोजन अधिकांश तो हवा होता था किन्तु स्वाद बदलनेके लिए वे कभी-कभी कन्द-मूल-फल खा लिया करते थे। यह कन्द और कुछ नहीं आलू ही है।

आलूमें कितना जीवन-तत्व होता है, कितना पोषण-तत्व होता है और कितना मारण-तत्व होता है, यह बतानेका काम डाक्टरों और सरकारके उन विभागों पर छोड़ देता हूँ जो इन बातोंमें उलझे हुए हैं। किन्तु मैं इतना जानता हूँ कि भोजनका यदि रसनासे संबंध है तो आलू से बढ़कर स्वादिष्ट भोजन इस या किसी संसारमें नहीं है।

बुद्धिमान लोग संभवतः यह पूछ बैठें कि यदि आलू यहाँका पदार्थ है तो यह इतने दिनों लुप्त कहाँ रहा और फिर आयरलैण्डसे आनेपर इसकी खेती यहाँ कैसे आरम्भ हुई और लोगोंने पहले इसे खानेमें वही भाव क्यों दिखाया जो रेलके तीसरे दरजेके यात्री हर स्टेशन पर नए यात्री पर दिखाते है। हमारे यहाँका इतिहास विचित्रताओंका मेल-मिलाप है। जिस प्रकार अहल्या बहुत दिनों तक पत्थर थीं, जैसे सरस्वती बहुत दिनों तक लोप होने पर प्रयागमें गंगा-यमुनाके नीचे निकल आई, उसी प्रकार आलू यहाँसे लोप हो गया। जिस प्रकार गौतमने अहल्याको शाप दिया था और शमीकने परीक्षितको शाप दिया था उसी प्रकार महर्षि अमृषायनने आलूको शाप दिया था। उनकी पत्नीने एक दिन आलू भूनकर रखा और वह कच्चा निकला। सहस्रों वर्षों तकके लिए भारतसे वह निर्वासित होकर दक्षिण अमरीका चला गया। कई सौ वर्षों-के बाद उसका उद्धार हुआ और वह पश्चिमी युरोपमें आया, जहाँसे फिर इसने अपना साम्राज्य विश्वमें फैलाया।

आलूमें ही यह विशेषता है कि वह साम्राज्यवादी होते हुए भी जनवादी है। महारानी एलिजाबेथ भी इसे खाती हैं, मोलेनकोफ भी खाते हैं, नेहरूजी और कृपालानी भी; योगी भी भोगी भी; छायावादी भी प्रयोगवादी भी; रूसी भी, अमरकी भी। भिक्षुकसे पूँजीपति तक और देवतासे दैत्य तक इसका सेवन उसी चावसे करते हैं जिस चावसे युवक चेहरेकी सफाई करते हैं। पुरोहितोंको प्रेरित कर देवताओंने इसे अपने भोगकी सामग्री बना ली और व्रतमें सब वस्तुओंमें इसे श्रेष्ठता दी।

सस्तेमें चायके साथ निपटना हो तो चिप या वेफरके रूपमें आलू आपका सहायक होता है; श्रीमतीजी यदि मैके गई हैं और आपको जल्दीमें कचहरी या कालेज जाना है और तरकारी छीलने, काटने, मसाला लगाने छौंकनेकी झंझट आप उठाना नहीं चाहते तो आपकी

कठिनाई आलू दूर करता है। तुरन्त दो-चार भूँजिए, कुछ नहीं तो नमक-मिरच ही मिलाकर मोहनभोगका आनन्द उठा लीजिए। आकारमें वह विश्वका स्वरूप है और इसलिए ईश्वरका प्रतीक है।

वनस्पति जगतमें यही एक पदार्थ है जिसे भगवानने 'आँख' प्रदान-की है। कुछ लोगोंका भ्रम है कि स्वास्थ्यके लिए यह हानिकारक है। यह उन चतुर आदमियोंकी चाल है जो चाहते हैं कि इस प्रकार बहुत-से लोग आलू खाना छोड़ दें और वह सस्ता हो जाए तो वे लोग (चतुर आदमी) अधिक से अधिक इसका सेवन करें। संसार अनेक बार ऐसे धूर्तोंसे धोखा खा चुका है। जैसे जनताके अधिकारोंको कोई छीन नहीं सकता, वैसे ही आलूको उसके स्थानसे कोई हटा नहीं सकता। हमारा तो सुझाव है कि जैसे रूसके मजदूरोंका प्रतीक हँसिया और हथौड़ा है, उसी प्रकार विश्व भरकी जनताका प्रतीक आलू माना जाए। हम आशा करते हैं कि कोई जनताका सेवक और हितैषी इस प्रकारका झण्डा बनाएगा जिसमें आलूका चित्र हो।

गहरेबाज

गहरेबाज शब्द बहुत व्यापक है, जैसे रोमान्स या सिगरेट या मूँछोंका मुँड़ाना। किन्तु कभी-कभी किसी नगर विशेषसे उसका लगाव विशेष रूपसे हो जाता है। जिस प्रकार बिल्ली और दहीका संबंध है, परीक्षा और नकलका संबंध है लिपस्टिक और अधरका संबंध है उसी प्रकार काशी या वाराणसीका गहरेबाजसे संबंध है। किन्तु कुछ गहरेबाज ऐसे भी हैं जो सभी स्थानोंमें पाये जाते हैं।

गहरेबाज कई प्रकारके होते हैं। एक होता है गहरेबाज एक्का, एक होता है गहरेबाज साहित्यकार, और एक होता है गहरेबाज बनारसी, गहरेबाज नेता और गहरेबाज

विद्यार्थी। पहिला और तीसरा तो वाराणसीकी विशेषता है शेष तो हमारे देशकी विशेषता है। गहरेबाज एक्केका वही महत्त्व है जो प्राचीन इतिहास और प्राचीन संस्कृतिका है। रिक्शाके आक्रमणने उसे धराशायी कर रखा है जैसे नयी सभ्यताने पुरानीको धर दाबा है। गहरेबाज एक्का उसी प्रकार लोप होता चला जा रहा है जिस प्रकार राजतंत्र। किन्तु अब भी किसी-किसी दिन और वर्षमें कुछ दिन पुच्छल तारेकी भाँति उसके दर्शन हो जाते हैं। उसका साजबाज और उसका ठाट-बाट निराला होता है। उसका घोड़ा साधारण नहीं होता। उसमें चमक होती है दमक होती है। कामिनयोंके कपोलके समान स्निग्ध, मलाईसे परिपुष्ट तोंदके समान दृढ़, पारेके समान चंचल और सुन्दर कविताके समान सजीव होते हैं। गौनेवाली बहूके समान इनका शृङ्गार होता है। एक्के भी जिनमें यह जुते होते हैं विशिष्ट ढंगके होते हैं। अर्जुनके रथके समान सुदृढ़ किन्तु खुले हुए, नयी कारके समान चमाचम किन्तु बिना इंजनके। विक्टोरिया गाड़ीके समान भव्य किन्तु दो पहियेके होते हैं। इनको हाँकनेवाला अपनेको कुछ समझता है और जब हाँकता है दूसरेको कुछ नहीं समझता। सिरपर साफा, तनपर तनजेबका कुरता, कमरके लुंगी अथवा महीन धोती, हाँथमें चाबुक, मूँछोंपर ताव आँखोंमें खुमार मनमें विश्व-विजयी होनेका गुमान और हृदयमें उमंगकी उफान लिये यह एक्का हाँकने बैठता है। इसपरके सवार बनारसके मनचले जवान होते हैं जिनकी जेबमें पैसे, दिलमें मस्ती और हल्की-हल्की बुतपरस्तीका अरमान रहता है।

जिस समय गहरेबाज एक्का चलता है किसी ब्रैंडकी कार हो उसके सामने वह वैसी है जैसे अंडेके सामने आलू, या सिगारके सामने बीड़ी होती है। झनाझनकी आवाज़ दूरसे ऐसी सुनायी देती है मानों सैकड़ों नर्तकियाँ घुँघरू पहने कथक नृत्य एक साथ कर रही

हैं। घोड़ेका टाप धरती पर ऐसा-ऐसा नाचता हुआ पड़ता है मानो सधे हाथ तबले पर पड़ रहे हैं। इनके सामने आना अस्पतालका दरवाजा देखना है। यह एक्के दिनभर नहीं चलते। जो किरायेके होते हैं संध्याको दो एक घंटे चलते हैं। और इतनेमें ही अपनी आवश्यकता भर कमा लेते हैं। पाँच या छ रुपये। रामनगरकी रामलीलाके अवसर यह बहुधा देखे जाते हैं जब सैर सपाटेके शौकीन किन्तु मोटरकार विहीन लोग नगरके बाहरकी सैर भी कर लेते हैं। और रामलीला भी देख लेत हैं। तबीयतदारी और धर्मकी सड़क एक ही छलाँगमें पार करते हैं। अनेक पैसेवालोंने जो पहले गहरेबाज एक्के रखते थे अब कार रख लिया है। फिर भी कुछ लोगोंके पास अब भी अपने गहरेबाज एक्के हैं। वह समझते हैं एक्के और कारका अलग अलग आनन्द है। रग और रजाई, बिसकुट और मिठाई, मखन और मलाई अपनी अपनी जगह सभी अच्छे हैं। कोई एक दूसरेका स्थान नहीं ले सकता। इसी प्रकार गहरेबाज एक्केकी अपनी शान अपना ढंग है। जहाँ साइकिलने घोड़ेका स्थान ले लिया, वहीं कारने गहरेबाजका स्थान लिया। प्राचीन कविताकी भाँति वह सम्मान तो नहीं रहा जो पहले था किन्तु अब भी इसका अस्तित्व है और इसके प्रसंशक तथा चाहक भी हैं।

गहरेबाज साहित्यकार उतने ही बढ़ रहे है जितने गहरेबाज एक्के कम हो रहे हैं। बाढ़ आये अथवा सूखा पड़े इनकी फसलमें कमी नहीं होती। इनकी गहराई नापना कठिन है। इनका उपन्यास पढ़िये आरंभसे इति तक एक एक वाक्य मौलिक। दस सालके बाद पता चलेगा कि उस फ्रेंच उपन्यासका हिन्दी रूपान्तर है जिसका अनुवाद अंग्रेजी में हुआ था और जो इतना महत्वपूर्ण था कि किसीने पढ़ना आवश्यक न समझा। इनकी वह कविता जो उस साप्ताहिकमें छपी

थी और कवि सम्मेलनमें जिस पर दस मिनट तक तालियाँ पिटी थीं और जिसकी सूझ पर लोग झूम झूम पढ़ते थे और जो नवीनताकी एक मंजिल समझी जाती थी वह अमेरिकाकी एक मैगजीनकी एक रचनाकी हिन्दी है किन्तु उसे बहुत कम लोगोंने पढ़ा है। गहरेबाज साहित्यकार बहुत विद्वान् होता है। वह ज्योंही कोई पुस्तक प्रकाशित होती है उसकी विषय सूची पढ़ लेता है। वह साहसी होता है। दूसरे नामसे स्वयं अपनी कृतिकी आलोचना करता है। वह संस्था संचालक होता है इस संस्थाक सदस्योंकी संख्या दो ही दिनोंमें दूनी हो जाती है जब उसकी पत्नी भी सदस्य हो जाती है। उसकी जिह्वाके अग्र भाग पर कुछ रूसी कुछ अंग्रेजी, और कुछ अमरीकी साहित्यकारोंके नाम होते हैं जिन्हें वह प्रत्येक अवसर पर उसी प्रकार पुकारा करता है जैसे पंडित लोग स्मृतिको और प्राचीनताके उपासक अपने पूर्वजोंको। गम्भीरताका आवरण वह धारण करता है जैसे घड़ीका केस होता है। पुरजे दिखायी नहीं देते। और भाषाओंमें गहरेबाज साहित्यकार होते हैं कि नहीं नहीं कह सकता किन्तु हमारे यहाँ इनकी संख्या अच्छी है।

गहरे बाज बनारसी बेजोड़ व्यक्ति है। विश्व बदल गया किन्तु वह नहीं बदला। जब तक वह है तब तक वाराणसीकी प्रत्येक गलीके मोड़ पर पानकी दूकान है, प्रत्येक हलवाईकी दूकान पर सबेरे कचौरियाँ बनेंगी, और बारह बजे रात तक मलाईकी दूकान खुली रहेगी। धुले हुए कपड़े पर भी वह साबुन लगाता है। और अपने हाथ पाँवकी गठन पर उसकी उतनी ही दृष्टि रहती है जितनी सबेरे गंगा स्थान पर। वह लड़ता नहीं और कोई ललकारे तो भागता नहीं। व्यवसायसे पैसे कमाता है। अब वह शामको सिनेमा भी देखने लगा है। गहरेबाज बनारसी भंगका उतना ही शौकीन है जितना क्षत्री जंगका और ध्रुपदिया मृदंगका। विश्वकी राजनीतिसे इसे किसी प्रकारका लगाव नहीं होता।

ऐटमबम तथा हाइड्रोजन बम उसके लिये वैसे ही हैं जैसे अकबरकी आत्माके लिये छायावादी कविता। बम भोलाका वह उपासक होता है यद्यपि शैव दर्शनसे वह उतना ही परिचित है जितना जितना रामचन्द्र शुकरात से थे। जन्मसे लेकर मरण तक उसके सब कार्य शिवजीके अधीन हैं। और उनके लिये सब कुछ गंगा माताके वरदानसे होता है। यद्यपि गत युद्धने और समाचार पत्रोंकी अधिकताने उसे कुछ झकझोरा है और उसके विचारोंमें परिवर्तनको हल्की हवा लगी है तथापि आजसे सौ साल पहलेके गहरे बाज बनारसी और आजके गहरेबाज बनारसीमें वही अन्तर है जो नये और पुराने रेलवे टाइमटेबुलमें होता है। इस गहरेबाज बनारसीकी छाप कुछ न कुछ सभी वाराणसीके रहनेवालों पर पड़ी है। किसी पर कुछ, किसी पर कुछ। उसे जब अवसर मिलता है, अवकाश मिलता है वह सैर सपाटेके लिये निकल पड़ता है। अकेले नहीं चार मित्रोंके साथ। वर्षा और जाड़ेमें विशेषकर अवकाशके दिनोंमें वह बाग बगीचे पहुँच जाता है। बहुतोंके अपने बाग हैं। वह वहाँ घरसे भोजन नहीं ले जाता न किसी होटलसे मंगवाता है। मित्र मंडली मिलकर भोजन बनाती है उसका भोजन कच्चा शाकाहारी होता है। जाड़ेमें हरी मटरकी फली और चिउड़ेकी खिचड़ी जिसके साथ मखनके समान मृदुल मगदल खाता है। जो यहाँकी विशेषता है और स्वर्ग में भी वह नहीं मिल सकता। बनारसवाले बार बार इसके लिये जन्म लेना चाहते हैं। गहरेबाज बनारसीका जीवन एक शब्दमें मस्तीका जीवन है।

गहरेबाज नेता बीसवीं शतीकी उपज है। सिनेमा; रेडियो, कार और हवाई जहाजके साथ इसका जन्म हुआ है। यह सर्वव्यापी है। सभी देश तथा सब नगरोंमें मिलता है। वह क्या नहीं कर सकता इसकी सूची बनायी जाय तो वह शून्य होगी। यह मंचपर भाषण देता है तब सिसेरो, डिमास्थेनीज और बर्ककी आत्माएँ स्वर्गसे घबराकर

भागनेकी चेष्टा करती हैं। पढ़े लिखे बुद्धिमान लोगों पर इसका प्रभाव उतना ही पड़ता है जितना खटाईका स्टेनलेस स्टीलके बरतन पर। नासमझ जनताके लिये यह प्रकाशका स्रोत है। यह आवश्यक नहीं है कि यह किसी विशेष राजनीतिक दलका हो। यह गहरेबाज राजनीति, धर्म, समाज, शिक्षा सभीमें पाया जाता है। यही इनका व्यवसाय है। इसके अतिरिक्त यह क्या करते हैं इसका पता लगाना उतना ही असंभव है जितना हवासे चीनी बनाना। गाँव हो या नगर, सभा हो या डगर, सब जगह यह पाये जाते हैं। इन्हें खोजनेका प्रयास नहीं करना पड़ता। भगवानकी भाँति किसी न किसी भेषमें यह मिल जाते हैं। यद्यपि इनकी शक्ति उतनी ही होती है जितनी उबले पानी की फिर भी यह अपनेको इतना जताते हैं कि देशमें हमीं सब कुछ हैं। मंदिर, मसजिद, गिरजा, विश्वविद्यालय सार्वजनिक सभा, सबमें यह आगे पहुँच जाते हैं। इनकी गहरेबाजी मनोरंजक होती है।

गहरेबाज विद्यार्थी केवल हमारे देशमें पाये जाते हैं। यह पतलून और कमीज पहनते हैं। रंगीन चश्मा जेबमें रखते हैं जिसकी एक साइड बाहर निकली रहती है। जिस भाँति प्राचीन कालमें क्षत्राणियाँ सीनेके पास कटार रखती थीं यह फाउन्टेन पेन खोंसे रहते हैं। यह परीक्षाके पहले परिश्रम नहीं करते उसके बाद परिश्रम करते हैं। पता लगानेमें कि कौन किस परचेका परीक्षक है और वह कहाँ रहता है। पढ़ाईके समय इन्हें खोजना हो तो यह तमोलीकी दूकान पर मिलेंगे। संध्याको खोजना हो तो किसी न किसी सिनेमाके फाटकपर, रातमें काफीकी दूकानपर। अध्यापक और प्राध्यापक इनके मित्र होते हैं। स्वयं कम खर्च करते हैं मित्रोंके मत्थे पान जलपानका डौल हो जाता है। पुस्तकें यह नहीं खरीदते। एक नोटबुक केवल लेकर कालेज जाते हैं। साइकिल आवश्यक होती है क्योंकि अनेक अवसरोंपर इन्हें चक्कर लगाना पड़ता है।

गहरेबाज

यह हैं हमारे गहरेबाज। समाजकी रंगत इनसे है किन्तु इनकी संगत समझबूझकर करनी चाहिये। एक बहुत विख्यात कवि कह गये हैं—

इनसे आओ बाज यदि रखना है निज लाज
गोजर, गदहा, गणित औ गांजा, गहरेबाज

संगीतज्ञ

प्याला तश्तरीके साथ शोभा देता है, टोस्ट चायके साथ अच्छा लगता है, कत्था चूनेके साथ रंग लाता है और मनुष्यको मनुष्यके साथ रस मिलता है। और यदि मनुष्य कलाकार हो, मधुर कंठ वाला हो तबतो उसके साथसे यही आशाकी जाती है जो शरबतमें बरफ डालनेसे, विवाहमें मोटरकार मिलनेसे, या खोटा नोट चला देनेमें।

कहते हैं मनुष्य समाजमें रहने वाला प्राणी है। सभी जीव ऐसे ही हैं। बैल बैलके साथ रहना पसन्द करता है, गधा गधाके साथ उसी प्रकार मनुष्य भी। केवल पागल और संत अकेले रहना चाहते हैं।

पागल कम हैं, और संत उससे भी कम। इसलिए मनुष्यका लगाव मनुष्यके साथ होता है।

वाराणसीमें कुछ मित्रोंने संगीत सम्मेलनका आयोजन किया। रामपुरसे, ग्वालियरसे, बम्बईसे, दिल्लीसे, बरौदासे और कहाँ-कहाँसे चोटीके कलाकार बुलाये गये। कोई गायक था, कोई वादक था, कोई नर्तक था। कोई पुरुष था, कोई स्त्री। आयोजकोंने निश्चय किया कि इन कलाकारोंको होटलोंमें ठहराना ठीक न होगा। १-१ कलाकारको लोग अपने यहाँ ठहरालें तो बहुत बोझ भी न पड़ेगा, सम्मेलनका व्यय भी न होगा और कलाकारोंको समयसे रुचिकर भोजन मिलेगा; किसीको कष्ट या असुविधा न होगी। एक ही ढेलेसे इतने पक्षी मरेंगे। एक कलाकार मेरे यहाँके लिए भी नियुक्त हुए। उनके लिए मैंने अलग एक कमरा ठीक करा दिया। उनके लिए औरभी आवश्यक प्रबन्ध करा दिए।

१ बजे दिन लोग उन्हें होटलसे लाये। उनके साथ उनका एक शिष्य था। कलाकारकी अवस्था पैंतालीस या पचास की होगी शिष्यकी बीस-बाईस। सामान आदि रखनेके पश्चात् उन्होंने कहा मैं स्नान करूँगा। पानी गर्म करा दीजिए। मईका आरम्भ था। स्नानके पश्चात् चाय आई। दालमोट हटा दिया उन्होंने कि इसमें मिर्चे होंगी, समोसेमें भी कि सम्भवतः कुछ खटाई हो। रसगुल्ले और सेवड़े रख लिए। कप उठाते उठाते बोले कौनसी चाय पीते हैं आप। मैंने एक ब्रैण्डका नाम लिया उन्होंने कप रख दिया। बोले माफ कीजिए मैं तो अमुक पीता हूँ। बात यह है कि गलेका खयाल रखना पड़ता है, एक ही ब्रैण्ड पीता हूँ। सदा। मैंने कहा कोई बात नहीं अभी आजाती है वह भी। बननेमें कितनी देर लगती है। उस दिन उनका कार्यक्रम सम्मेलनमें नहीं था। किन्तु हम लोगोंको जाना तो था ही। मैंने पूछा भोजनके लिए जो आव-

श्यक निर्देश हों कह दें। क्योंकि हमलोग किसी सिद्धान्तके अनुसार तो भोजन करते नहीं। वह मुसकराये, बोले हम लोगोंको गलेका ख्याल करना पड़ता है। सब्जियोंमें नेनुआ, परवर, लौकी, भिण्डी, तरोई और थोड़ा आलू भी खा लेता हूँ। प्याज भी खाता हूँ। दही बिलकुल नहीं। मलाई हो तो कोई हर्ज नहीं। मिर्च और खटाईसे दूर रहता हूँ। गलेका ख्याल रखना पड़ता है। नीबू सलादके साथ खा लेता हूँ। दूध नहीं पीता रातको कप डेढ कप ओवल टीन के साथ बस पीता हूँ। मैंने कहा इसमें तो कोई ऐसी बात नहीं सभीका प्रबन्ध हो जायगा। बोले क्या कहूँ बाबू साहब सीधा-साधा जीवन बिताता हूँ कलामें डूबा रहता हूँ। खाने-पीनेकी ओर ध्यान देनेकी फुरसत कहाँ। नेपाल दरबारमें गया था। वहाँ रातको लोगोंने भोजनके समय मलाईमें छ मासे सोने का वरक और तीन रत्ती कस्तूरी डालदी। इनकारकर देना पड़ा। बाबू-साहब खा लेतातो एक सप्ताहतक निषादका स्वर ही न निकलता। दिनके भोजनके सम्बन्धमें पूछ लेना मैंने उचित समझा। बोले दालमें उड़द, चना, मसूर मत बनवाइएगा। अरहर और मूंग ठीक होगी। फुलके चार खाता हूँ। मैंने उन्हें सिगरेट दिया। तो उन्होंने लौटा दिया। बोले मुआफ कीजिएगा सिगरेट पीता अवश्य हूँ। किन्तु सोबरानी सिगरेट पीता हूँ। न मिलने पर ७७७ भी पी लेता हूँ। उनका प्रिय तो मिला नहीं मैंने एक डिब्बा १२, रु० का मंगवा दिया।

साढ़े आठ बजे कार आई उन्हें लेनेके लिए। पहले उन्होंने कहा कि आज जाकर क्या करूँगा फिर पूछा मंत्री जी आये हैं। पता लगाने पर कि नहीं आये हैं, वह बोले देखिए मैं कैसे जा सकता हूँ। कोई बुलाने भी नहीं आया। अब कहाँ वह जमाना रहा जब आरटिस्टोंकी कदर होती थी। मैमन सिंहमें गया था कलक्टर साहब स्वयं आते थे मुझे बुलाने। आई० सी० एस० कलक्टर। पीली भीतमें एक वकील

साहब मन्त्री तो दिनमें तीन बार आते थे मुझसे मेरा हाल पूछने। लाखोंकी उनकी प्रेक्टिस थी। मैंने कहा मैं जरूर मन्त्रीजीको भेज देता हूँ। मैंने सम्मेलनमें जाकर मन्त्रीजीसे कहा। वह अनेक कार्योंमें व्यस्त थे किन्तु इन्हें रुष्ट नहीं करना था वह आये और इन्हें ले गये। किन्तु दस बजे यह लौट आये।

मैं दो बजे सम्मेलनसे लौटा। एक करवट ली ही होगी कि इनके कमरेसे अलापकी आवाज आई। घड़ीमें चार बजा था। मैं सोच ही रहा था कि यह खयाल है कि ध्रुपद, कि मेरी नौकरानीने मेरा द्वार खट-खटाया। दरवाजा खोला तो देखा उसके चेहरे पर भय और चिन्ता-के लक्षण हैं। आँखें कुछ कोटरोंसे निकली। मेरी नौकरानी आइंस्टीनके सापेक्ष वादका जीता जागता उदाहरण है। पैदा हुई बीसवीं शतीके सन् १९३० में किन्तु वह है उसी सन्की जब औरंजेब गद्दी पर बैठा। वह मूर्खतामें चूर और संसारसे बहुत दूर रहती है। संगीत तो क्या उसका नाम भी उसने नहीं सुना। चिन्तित स्वरमें अपनी भाषा और बोलीमें बोली आपके जो मेहमान आये हैं उनके पेटमें बड़ी पीड़ा हो रही है। मैंने पूछा तुझे कैसे मालूम। बोली बड़ी जोर जोरसे आध घन्टेसे चिल्ला रहे हैं। मैंने उसे डाँटा और कहा जा अपना काम कर। नींद भला कहाँ आती। आलापका आरोह अवरोह सुनता रहा। विद्यार्थियोंको चाहिए परीक्षाके दिनोंमें किसी संगीतज्ञको अपना अतिथि बनालें। अलार्मकी घड़ीकी आवश्यकता न पड़ेगी। और अलार्मको तो आप बन्द भी कर सकते हैं जैसा मैं किया करता था जब वह तीन बजे रातको बजने लगती थी। इन्हें बन्द नहीं कर सकते। ज्यों-ज्यों पश्चिमसे पूरबकी ओर धरती घूमती गई, आलापकी गति बढ़ती गई। ३ बजेसे ६ बजे तक मेरे घरमें केवल तानपूरेकी झनकार तथा संगीतकी पुकार ही सुनाई पड़ती थी।

चायके समय मैंने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा आप तो खूब अभ्यास करते हैं। इसीसे आप इतने अच्छे कलाकार हुए हैं। बोले अब क्या अभ्यास करता हूँ। चौदह साल तक जवानीमें बीस-बीस घन्टे अभ्यास किया है। हलकसे खून निकल आया है। तब स्वरोंकी साधना हुई है। मैं घमन्डकी बात नहीं कहता सारंगीमें जो स्वरोंके टुकड़े न निकले मैं निकाल दूं। यों तो गाना रोना किसे नहीं आता। मैं यह कहनेकी धृष्टता तो नहीं कर सकता कि तानसेन हूँ। दिल्लीमें मैंने मिया-की मल्लार गाया बादल छाने ही वाले थे कि कान्फ्रेन्समें एक बच्चा रोने लगा और मेरा ध्यान बँट गया। लोग बच्चोंको लेकर संगीत सम्मेलनमें जाते हैं। मानो कोई सिनेमाका खेल हो। संगीतकी बारीकियाँ बड़े-बड़े लोग नहीं समझ सकते तो बच्चोंको लेजानेसे क्या फायदा। पटना सम्मेलनमें तीन गवैयोंने छायानट गाया। एक मैं भी था। बड़े-बड़े कलाकार थे। एकसे एक पारखी। दूसरे दिन अखबारोंमें मेरी इतनी प्रशंसा छापी गई कि निवास स्थान पर मेला लग गया। मेरा तो बैठना कठिन हो गया।

चायके बाद अनेक लोग उनसे मिलने आये। और प्रत्येकसे वह दो-चार सम्मेलनोंका वर्णन करते थे। उनकी कलाकी कहाँ कहाँ कितनी प्रशंसा हुई इसकी भी चर्चा विस्तार और ब्योरेसे वह करते थे। चार बजे तक यही क्रम रहा। मैं भी कभी कभी उनके कमरेमें चला जाता था। और उनकी कलाकी जानकारी कर लेता था।

चार बजे सम्मेलनके मंत्रीजी आये। उन्होंने पूछा कब सवारी भेजी जाय। इसका उत्तर देनेके पहले संगीतज्ञ महोदयने पूछा संगतके लिए किसे किसे रक्खा है। मंत्रीजीने कहा जिसे आप कहें। और उन्होंने तीन-चार तबलियोंका, दो तीन सारंगी वालोंका नाम बताया। कलाकारने कहा जिसने दो तीन अखिल भारतीय सम्मेलनोंमें नहीं

बजाया है वह तो चल नहीं सकेगा। मंत्री महोदयने उन लोगोंका परिचय दिया और बताया किस किस अखिल भारतीय संगीत सम्मेलनमें उन्होंने महान कलाकारोंकी संगतकी हैं और किसकी कितनी प्रशंसा हुई है। तब उन्हें कुछ सन्तोष हुआ। पूछा कितने बजे मेरा प्रोग्राम है। मंत्री महोदय बोले आठ बजे चलना चाहिए।

सातबजे कार आ गई। इसलिए कि मेरे कारण विलम्ब न हो, मैंने तुरत कपड़े पहन लिये और तैयार हो गया। संगीतज्ञ महोदय तैयार होने लगे। आठ तो कभी बज गये, नौ बजे आदमी आया बोले अभी चल रहा हूँ। साढे नौ बजे आदमी आया बोले बस अभी चला। दस बजे वह कार पर बैठे। मैं तीन घण्टोंसे बैठा बैठा प्रतीक्षा, झुंझलाहट घबराहटकी त्रिवेणोमें डुबकियाँ लगा रहा था। सम्मेलनके पंडालमें पहुँचनेपर उनका सब लोगोंने भव्य स्वागत किया। मंचपर वह बैठे। मैं भी उनके साथ बैठा।

थोड़ी देरके बाद उनका नाम पुकारा गया। वह माइकके सामने आये। बीस मिनट तक तानपूरे और तबलेका मिलान हुआ। इसके पश्चात् उन्होंने दस मिनट तक भाषण दिया। संगीतकी महत्तापर और बता रहे थे कि दादरा क्यों नहीं सुनना चाहिए कि कहींसे ताली बज गई। संगीतज्ञ महोदय अब रूष्ट हो गये बोले मैं ऐसे सम्मेलनमें गाना नहीं चाहता। लोगोंने मनाना आरम्भ किया। मनानेसे और जनानेसे ईश्वर ही रक्षा करे, क्या क्या बल, क्या क्या मोड़, क्या क्या अठखेलियाँ दिखाई पड़ी। सहस्त्रों लेखनियाँ एक साथ लिखें तब भी व्यक्त करना सम्भव नहीं। रूठने वालोंमें एक बात अवश्य है कि देर भले ही हो अन्त में मान जाते हैं।

उन्होंने आलाप आरम्भ किया। गलेमें इतनी मिठास थी कि यदि वह किसी प्रकार खींची जा सकती तो सेक्रीनसे अधिक मीठी होती।

जनता धन्य धन्य कहने लगी। डेढ घण्टेमें उन्होंने द्रुत और विलंबित गाया। पाँच मिनटके बाद लोगोंने चिल्लाना आरम्भ किया जय जयवन्ती, बोले यात्राके कारण मुझे जुकाम हो गया है। किसी प्रकार यह भी उन्होंने गया। तबलियेको बीचमें ताल भी बताते जाते थे। लोग झूमने लगे।

इसके बाद ही वह चलनेको तैयार हो गये। मैं अभी और लोगोंका गाना सुनना चाहता था। किन्तु उन्हें घर पहुँचना आवश्यक था। सोचा पहुँचाकर लौट आऊँगा। घर आनेपर उन्होंने कहा एक कप चाय बनवा दीजिए। पत्नीको जगाया, आग जलाई गयी, चाय बनी। बोले टोस्ट हो तो हो वह भी। रोटी थी नहीं। मैंने कहा बिस्कुट लाऊँ। उन्होंने कहा हाँ किन्तु देशी न हो। बिलायतका हो तो अच्छा। गलेका ख्याल रखना पड़ता है। मेरे यहाँ इस समय बिलायती बिस्कुट थे नहीं। और १ बजे रात वाराणसीमें बिस्कुटकी दूकान नहीं खुली रहती।

तीन दिनों तक वह मेरे यहाँ रहे। तीन रात मैं सोया नहीं। और दिनरात उनकी सेवामें रहा। बराबर उनकी फरमाइशोंपर ध्यान रहता था, तनिक भी गड़बड़ी होनेपर वह सम्मेलनमें जाने से इनकार कर सकते थे। उनके साथ निर्वाह करना और नगे पाँव नागफनीपर चलना समान था। उनके घर वाले तो निशिदिन तपस्याका जीवन बिताते होंगे। ऐसा जान पड़ा औरोंकी मैं नहीं कह सकता किन्तु ऐसे दो तीन सज्जनोंका भी यदि मेरा साथ हो जाय तो मैं घर छोड़कर कैलाश पर किसी गुफामें या टिंबकटू में जाकर रहने लगूँ।

एलेक्शन लड़ा

कुछ लोग जन्मसे अभागे होते हैं, और कुछ लोग अपनेसे दुर्भाग्य अपने ऊपर बुलाते हैं। मैं जन्मसे अभागा हूँ कि नहीं यह तो ज्योतिषी मेरी जन्मपत्री देखकर बता सकता है किंतु ऐसे अनेक अवसर हैं जब मैंने अपनी इच्छासे ही नहीं बड़े स्वागत सत्कारसे दुर्भाग्यको बुलाया है।

आजसे चार-पाँच साल पहलेकी बात है राज्य सभाका चुनाव होनेवाला था। जैसे इस साल जिधर देखो उधर समाचार पत्रोंमें यही छपता है कि बाढ़ आ गयी, उस समय प्रत्येक पत्रमें, प्रत्येक पेजमें चुनावका ही समाचार रहता था। जैसे रामचन्द्रको देखकर जनकपुरके सब लोग अपनेको

भूल गये उसी प्रकार सब लोग सब कुछ भूल गये चुनाव याद रहा।

एक दिन संध्या समय कुछ मित्र घाममें भुनी ताजा मटर खा रहे थे। यही चर्चा मेरे घर भी चल पड़ी। मेरे मित्रोंने कहा भाई तुम भी इस चुनावके रणक्षेत्रमें उतर आओ। बड़े बननेका यही उपाय है। हंसी और विनोद तो मित्रोंमें होता ही रहता है मैंभी इस हंसीमें मिल गया, दूध और पानीकी भाँति। गजमुक्ता चौबेने कहा आप समझते हैं मैं हंसी कर रहा हूँ। मैं ठीक कह रहा हूँ। आज यदि प्रतिष्ठा है, आदर है, सम्मान है, गौरव है, मान है, प्रसिद्धि है तो असेम्बलीकी सदस्यतामें। और मैं गम्भीर हूँ।

गजमुक्ता चौबे मेरे घनिष्ट मित्र हैं। घनिष्ट मित्रोंके जो लक्षण हैं सब पाये जाते हैं। मेरी भलाई चाहते हैं, चाय तथा काफ़ी पीनेके समय बिना नागा पहुँच जाते हैं और जो पुस्तकें ले जाते हैं लौटाते नहीं। उनकी हाँमें और मित्रोने हाँ मिलायी। सबने कहा आपको कुछ करना नहीं है। नामका पर्चा दाखिल कर दीजिये। वोट तो हम लोग लायेंगे। चौबेने कहा—बीस हजार वोट हमारे गिन लीजिये, इतना निश्चित है। घुनघुना सिंहने कहा—पन्द्रह हजार मेरे हाथमें भी है। आप खड़े होंगे तो भला और किसे मिलेंगे। आपसे हम लोगोंका काम निकलेगा। लेखनी कुमार सिनहाने कहा—मैं दौड़-धूप करूँगा। ठीक नहीं कह सकता किंतु पाँच हजारसे कम नहीं दिलाऊँगा। आप बैठे देखते रहिये।

बहुतसे लोग एलेक्शन लड़े होंगे किंतु ऐसा आश्वासन किसीको न मिला होगा। वह लोग चले गये। मैंने सोचा जब यह लोग इतनी सहायता करनेके लिये तैयार हैं मैं थोड़ी चेष्टा कर दूँगा तो सफलता मिल जाना असम्भव नहीं। जितना सोचता था यही समझमें आता था कि असेम्बलीका चुनाव लड़ना आवश्यक है। हंसी इस बातपर आती थी कि अबतक इस असेम्बली रूपी सुधाके घड़ेकी ओर क्यों नहीं दौड़ा।

एक बार असेम्बलीमें पहुँचकर पार्लिमेंट्री सेक्रेटरी, डिप्टी मिनिस्टर या मिनिस्टर तक हो जानेका अवसर है। वहीं नहीं पहुँचूँगा तब कैसे कुछ हो सकता हूँ। जैसे कली धीरे-धीरे फूल बन जाती है उसी प्रकार मेरे विचारका चित्र भी क्रमशः बड़ा होने लगा। मैंने सोचा परमात्माकी ओरसे यह अवसर मिला है। शेक्सपियरने मेरेही लिये कहा था—मानवके जीवनमें ज्वार आता है उसी समय उससे लाभ उठाना चाहिये, भाग्यके भवनकी वही सीढ़ी है। तुलसी भी याद आये। समय चूकनेपर पछताना होगा।

मैंने पत्रोंमें समाचार भेज दिया। परोक्षमें लोग क्या कहते थे जाननेके लिये मेरे पास जासूसोंका कोई प्रबंध न था, किंतु जो मिलता वही बधाई देता, कहता आपही ऐसे विद्वानको तो वहाँ जाना चाहिये। जो कुछ समझ सके, बोल सके। बड़ा अच्छा निर्णय किया आपने। जब उनसे सहायताके लिये कहता तब वह कहते आप भी क्या बात करते हैं। आपने अपनी जबान खोली तब क्या रह गया। मुझसे भी कहनेकी आवश्यकता है। और लोगोंसे आप कहिये सुनिये। जब आप क्षेत्रमें आ गये हैं तब और किसे हम लोग वोट देंगे।

यह बातें ऐसी थीं कि यदि नेपोलियन सेंट हेलेनामें सुनता तो एक बार पुनः रूसपर चढ़ाई कर देता। ऐसी उत्साहवर्द्धक बातें सुनकर चूहा बिल्ली, बिल्ली कुत्ता और कुत्ता शेर बन जाता। मैं तो साधारण मनुष्य था। उत्साह शरीरमें ऐसा भर गया जैसे टायरमें हवा भर जाती है। वोटरोंकी सूची मँगवाई। दो रीम कागज, एक दरजन पेंसिलें और एक बक्स कारबन पेपर मोल लाया। सूचीकी प्रतिलिपियाँ बनानेका प्रबन्ध किया। मित्रोंसे कहा तो उन्हें एक न एक काम निकल ही आया। एक मित्र चार दिनोंसे बहाना करते रहे। पाचवें दिन उनकी श्रीमती बोलीं कौन काम आपने लगा दिया है कि वह छ बजेसे

नौ बजे तक रातको गायब रहते हैं। मुझे क्रोध आया मैंने कहा : आज-कल उन्हें एक मित्र मिल गये हैं जिन्होंने उन्हें ताड़ी पीनेकी लत लगा दी है। वह संध्याको ताड़ीखाने चले जाते हैं।

आठ कार्यकर्ताओंको हमारे मित्रोंने इसके लिये निश्चित किया। मेरे चुनाव रूपी प्रासादके यह आठ खंभे थे। सबोंने बताया कि हमारा प्रभाव इतना है कि यदि वोटरका पिता भी मैदानमें हो तो उसे वोट न देकर सब आपको ही वोट देंगे।

मेरा पर्चा दाखिल किया गया। पर्चा क्या भर रहा था मानो चित्रगुप्त बनकर अपने जीवनका लेखाजोखा लिख रहा था। अनेक पुराने अखाड़ियों, वकीलों, चुनावके चतुरंग चमूके विजयी लोगोंसे परा-मर्श करके पर्चे भरे। उसमें तीन अशुद्ध निकल आये। एक पता नहीं कैसे ठीक निकल गया। चुनावका चक्र और भी गतिसे चलने लगा। दिन पर दिन मेरा विश्वास बरसातकी घासके समान जमता ही जाता था। बड़प्पन मेरे सामने ग्रैंड ट्रंक एक्सप्रेसके समान बढ़ता ही चला आता था। घोषणापत्र छपवाकर बँटवा दिया। उसे पढ़नेवाला समझ जाता कि मेरे चुने जानेके पश्चात् मेरा प्रदेश सुपर स्वर्ग बन जायगा। पन्द्रह दिन रह गये तब मैंने सोचा कि एक बार मैं भी अपने क्षेत्रमें घूम आऊँ। दो तीन उन साथियोंको लिया जिनके बूते पर मैं चुनाव लड़नेके लिये तैयार हुआ था। पहले एक साबके घर पहुँचा। वह अपनी तेलमें सनी लुंगी पहने एक अफगानीसे हींगका भाव कर रहे थे। मेरे मित्रोंने परिचय कराया, आनेका आशय बताया। साबजीने अपनी टकसाली हिन्दीमें उत्तर दिया जिसका खड़ी बोलीमें अनुवाद यह है कि मैं किसीको नहीं जानता। घुरपतरी साब जिसे कहेंगे उसीको वोट दूँगा। एक वकील साहबने कहा : सब अपने-अपने कामके लिये वहाँ जाते हैं। वोट लेनेके लिये दस बार दौड़ेंगे फिर किसीकी शकल नहीं

दिखायी देगी। एक कालेजके लेक्चरर महोदयने कहा : मैं पढ़ा लिखा आदमी हूँ। मुझे इतना ज्ञान है कि समझ सकूँ कौन योग्य है। आप लोग क्यों मेरा और अपना समय नष्ट कर रहे हैं।

पन्द्रह दिनोंमें अपने क्षेत्रके सभी लोगोंको घर घर देखा। यदि इतने परिश्रम, इतनी लगन, इतने मनोयोगसे ईश्वरको ढूँढ़ता तो वह अवश्य मिल गया होता। चुनावका दिन आ गया आँख खुलते ही सामने दीवारपर कैलेंडरपर दृष्टि पड़ी। उसपर पाँच रंगोंमें बड़े हावभावसे एक सिनेमा स्टारका चित्र रंगा था। सबेरे उसीका मुख देखा। चुनावके दिनका वर्णन पृथ्वीराज रासोसे कम नहीं। आठ हजार रुपये खर्च हुए, जिसमें डेढ़ हजार मेरी पत्नीके, छ हजार मेरे एक मित्रके जिन्होंने मेरे पास रख छोड़ा था। पाँच सौ मेरे भी थे।

परिणाम निकलने पर पता चला मुझे इतने वोट मिले कि जमानत जब्त हो गयी। मन मिश्रकी ममीके समान मुर्दा, शरीर लकड़ीके चैलेके समान और चेहरा ऐसा हो गया कि लिखनेसे लेखनी हिचकती है। रिवालवरके लैसंसके लिये दरखास्त दे दी है किन्तु अभी तक परमिट मिला नहीं और वह लोग भी दिखायी नहीं दे रहे हैं जिन्होने चुनाव लड़नेके लिये मुझे उभारा था।

मेरा संगीतका अनुभव

साहित्य और संगीतका पुराना संग है। वैसा ही, जैसा डॉक्टर और इंजेक्शनका, लेखक और रॉयल्टीका, अखबार और हॉकरका। इसलिए, मुझे साहित्यसे प्रेम होनेके कारण संगीतसे भी रहा है। संगीत-सम्मेलनों, परिषदों, निजी बैठकोंमें मैं गीतका आनंद लेता रहा हूँ। यद्यपि उनका ज्ञान अभी तक कुछ नहीं हुआ। इतना अवश्य है कि पहले मैं समझता था कोमल केवल मलाई होती है। अब जानने लगा हूँ कि कोमल स्वर भी होते हैं। यद्यपि मेरे लिए कोमल स्वर वही है, जिससे श्रीमतीजी रविवारके सुबह मुझे जगाती हैं, जब मैं नौ बजे तक सोता हूँ। पहले

जौनपुरी इमरती ही जानता था, अब पता चला है कि जौनपुरी खयाल भी होता है। यह भी समझमें आया कि संगीतके पंडित तथा संगीत-शास्त्रके रचयिता रसिक भी कम नहीं थे। उन्हें राग बनाने हीसे संतोष नहीं हुआ। उन्होंने उनकी पत्नियाँ भी बनाई और उस युगमें बहु-पत्नी रखनेके विरुद्ध कोई क़ानून न था, इसलिए, छ-छ पत्नियाँ बनीं एक-एक रागकी। मुझे आनंद तो तब आया, जब पता चला कि भैरवकी पत्नियाँ 'सिंधवी' और 'बंगाली' भी हैं। इससे प्राचीन कालमें भी भारत-की राष्ट्रीय-भावनाका पता लगता है। अंतर्प्रांतीय विवाह पहले होते थे। इधर ही कुछ दिनोंसे बंद हो गए थे।

इस प्रकार संगीतके कलाकारोंकी संगतसे ज्ञानका भांडार तो भरा ही, अनुभव भी अनेक हुए और शिक्षा भी प्राप्त हुई। जैसे खोज करने पर जान पड़ा कि जिस समय संगीतकी साधना आरंभ हुई, पत्रा तो था, घड़ी न थी। यों विशेष राग, विशेष समय पर गानेकी पद्धति अवश्य है, किंतु, बड़े-बड़े कलाकार समयके बंधनसे मुक्त हैं। यदि किसी कलाकार-से कहा जाय—महोदय, आपने कल्याण-रागको सिद्ध किया है, आज संध्याको आइए, सुना जाय, तो वह विहागके समय अवश्य उपस्थित हो जायँगे। चिंता नहीं करनी चाहिए। अब तो मैं संगीतके कलाकारों-का ढंग कुछ-कुछ जान गया, पहले बहुत भ्रम हो जाता था। तीस साल पहलेकी बात है। कार्तिककी पूर्णिमा थी। काशीके जड़ाऊ मंदिर-में सबेरे आठ बजेसे भीड़ होने लगी। काशीकी गायक-गायिकाएँ एकत्र होने लगीं। एक उस्ताद आए। लोग उसके संम्मानमें खड़े हो गए। थोड़ी देर बाद उन्होंने तंबूरा मिलाना आरंभ किया। उन्होंने थोड़ी देर बाद चारों तारों पर उँगलियाँ फेरनी आरंभ कीं, जैसे प्रेमी अपनी प्रेमिकाकी लटोंमें उँगली फेरता है। इसके पश्चात् उन्होंने अलापना आरंभ किया। बगलमें बैठे सारंगीवालेसे मैंने पूछा—क्या गा रहे हैं।

उसने बताया—अड़ानेका खयाल गा रहे हैं। सचमुच उनका गाना सुनकर सब लोग वहीं अड़ गए। किसीने उठनेका नाम नहीं लिया। थोड़ी देरके बाद मुँह कभी एक ओर, कभी दूसरी ओर टेढ़ा होने लगा। मैंने बड़ोंसे सुना था—मुँह पर कभी-कभी लकवा मार जाता है। फैशल पेरेलेसिस। किंतु, जब बार-बार वैसा होने लगा, तब मैंने समझा—गानेके समय ऐसा करना होता है। मैंने समझा—इससे मुँहकी कसरत हो जाती है और ऐसा करनेसे शायद मुंह पर झुर्रियाँ भी न पड़ती होंगी।

कभी-कभी भूलमें मुझसे ऐसे अपराध भी हो गए हैं, जिनके लिए आजतक मुझे पश्चात्ताप है। मेरी अवस्था उस समय तेरह-चौदह सालकी रही होगी। एक बार निजामाबादमें मेरे यहाँ एक गायक आए। उन दिनों नाच-गानेकी हमारे यहाँ बहुधा बैठकें हुआ करती थीं। गायक महोदय बैठे हारमोनियम लेकर। तबलिया मस्त होकर तबला बजाने लगा। उसका सिर ऊपर-नीचे, दाएँ-बाएँ जोरोंसे झूम रहा था। बिजली उन दिनों न थी। निजामाबादमें आज भी नहीं है। गर्मी लग रही थी। मैं उठा। ताड़का एक छोटा पंखा और सूतकी एक डोरी लाया और मैंने चाहा कि उनकी गरदनके पीछे बाँध दूँ। वह तबला भी बजाते जायँ तथा गायकको हवा भी लगती जाय। मैं बाँध भी न पाया था कि लोग बिगड़ने लगे। तबलिएसे क्षमा माँगनी पड़ी।

खयालमें आलापका बहुत महत्त्व होता है। जैसे मकरध्वजके लिए पारा और विवाहके लिए दारा। बड़े-बड़े उस्ताद दो-दो घन्टे तक आलाप लेते रहते हैं। विद्वान् तो यहाँ तक कहते हैं कि सिद्ध कलाकार जब आलाप लेने लगता है, तब क्षीर-सागरमें भगवान् उठकर बैठ जाते हैं। यह दूसरी बात है कि श्रोताओंमें केवल एक प्रतिशत आलापकी बारीकी समझ पाते हैं। उन्हें आनंद आता है, यह तो निश्चित् ही है। किंतु, वे अधिकांश भाई लोग जिनके लिए यह आलाप वैसा ही होता है, जैसा

शायद महारानी एलिजाबेथके लिए सोहर हो सकता था, अपने मनमें ऐसे शब्दोंकी माला जपते हैं, जिन्हें अच्छे कोशोंमें स्थान नहीं मिला है।

इस सम्बन्धकी एक घटनाका संगीतके इतिहासमें महत्त्वका स्थान है। उसका वर्णन न करना संगीतके प्रति तथा संगीतके कलाकारोंके प्रति अन्याय होगा। नागपुरमें संगीत-समारोहका विषद आयोजन था। एक दिन केवल एक महान् कलाकारकी ही वाणी सुननेका प्रबन्ध किया गया। यह सिद्ध कलाकार थे। इनके गायनसे दीपक तो न जल उठते थे, न पानी ही बरसता था, किंतु सुनता हूँ कि उनके स्वरके माधुर्य तथा गलेकी लचकसे श्रोताओंका हृदय लहालोट हो जाता था। लोग चाहते थे एक दिन केवल उन्हींकी कलाका आनन्द लिया जाय। नौ बजे रातसे उन्होंने गाना आरम्भ किया और लगे अलाप लेने। आधा हॉल दस बजे खाली हो गया। तीन-चौथाई ग्यारह बजे और बारह बजे संगत करनेवालोंको छोड़कर केवल एक व्यक्ति रह गया। उस समय कलाकार महोदय आनन्दसे विभोर होकर बोल उठे—"बस मैं आप-ऐसे ही संगीत-मर्मज्ञसे प्रसन्न होता हूँ, जो संगीत समझते हैं और शांतिसे सुनते हैं।" उस व्यक्तिने उत्तर दिया—"महाराज, संगीत तो मैं बिलकुल नहीं समझता। बात यह है कि जिस क़ालीन पर आप बैठे हैं, वह मेरी है। मैं इस इन्तजारमें हूँ कि आप उठें, तो इसे लेता जाऊँ।"

संगीतमें आलापका स्थान बहुत बड़ा है, यह मुझे पहले न मालूम था। किन्तु, इससे भ्रम भी हो जानेकी संभावना है, यदि मेरे-ऐसा अज्ञान हो। मेरे पड़ोसमें एक सज्जन नए-नए आए। मुझे पता न था कि उनकी पत्नी संगीतकी साधना करती है। जाड़ेकी रात थी। लगभग चार बजे सबेरेका समय था। यकायक उनके ऊपरके कमरेसे चिल्लानेकी आवाज आई। मैं सदासे स्त्रियोंके ऊपर अत्याचारका

विरोधी रहा हूँ। मैंने समझा कि उनके पति स्त्रीको पीट रहे हैं। मैं तुरन्त बाहर निकलकर उनके द्वार पर पहुँचा और उन्हें आवेशमें मैंने पुकारा। वह आए, तो मैंने काँपते स्वरमें कहा—"मैं जानता हूँ कि दूसरेके घरेलू मामलोंमें किसीको बोलनेका अधिकार नहीं है, किन्तु यह क्या उचित है कि आप पढ़े-लिखे भले-आदमी होकर अपनी पत्नीको पीट रहे हैं।" वह बोले—"क्या बात है, कौन पीट रहा है।" मैंने कहा—"अभी-अभी चिल्लाहटकी आवाज आ रही थी।" उन्होंने हँसकर कहा—"अरे भाई, कोई पीट नहीं रहा था। वह भैरवका आलाप ले रही थीं।" मैं लज्जित होकर घर चला आया।

संगीतमें हमारे यहाँ वादन तथा नृत्य भी सम्मिलित है। भरत, मनीपुरी तथा कथक-नृत्य देखनेका अनेक बार सौभाग्य हुआ है। नृत्य और कुश्तीमें मुझे केवल यह अन्तर जान पड़ा कि कुश्तीमें कई पकड़ वर्जित हैं।

आजकल सांस्कृतिक जागरणके कारण हमारे देशमें सरकार तथा जनता दोनोंका ध्यान संगीतकी ओर आकृष्ट हो रहा है। देशके उत्थान के लिए ये शुभ लक्षण हैं।

मेरे एक मित्र एक विश्वविद्यालयमें प्राध्यापक हैं। उनकी अवस्था इस समय तीस सालकी है। दो वर्ष हुए, उन्होंने विवाह किया है। उनकी पत्नी कथक नृत्यमें पटु हैं। विद्यार्थी-जीवनमें अनेकबार पुरस्कार मिल चुका है। एक बार मैं प्रोफेसर महोदयसे मिलने गया। उनकी पत्नीने कहा—"वह अभी आते ही होंगे।" आप बैठें। पन्द्रह मिनट बाद ही वह आ गए। साधारण वार्तालापके बाद उन्होंने पत्नीसे कहा—"जल्द चायका प्रबन्ध करो, देखो, बेढबजी आये हैं। पुराने साथी हैं। इनके लिए कुछ बढ़िया चीजें बनाओ।" मेरी प्रशंसा भी उन्होंनेकी। उनकी पत्नीने कहा—"अच्छा, अच्छा। चाय बन जायगी। आज बड़े

परिश्रमसे मैंने एक नवीन गत तैयार की है।" उसके बोल भी उन्होंने सुनाए। कहा—"यह बिलकुल नई खोज है। इसके पहले कि मैं कुछ कहूँ, वह घरके अन्दर चली गयी। मैंने समझा—समोसे और पकोड़ियाँ बना रही हैं। पन्द्रह मिनिटमें वह घुँघरू पहने लौटीं। और लगीं नाचने। दो घंटे तक उन्होंने अपनी कलाकी बारीकियाँ, अंगोंका मोड़, घुँघरू पर नियन्त्रण आदि दिखाया। प्रोफेसर साहबकी दिन-भरकी थकान बिना चाय पीये ही दूर हो गई। मुझे जितने शब्द उस समय याद पड़े, उनमे उनकी पत्नीकी प्रशंसाकी। छ बजेकी गाड़ीसे आना था, इसलिए चाय पिये बिना ही स्टेशन चला आया।

प्रारब्धका लेखा

एक महीना हुआ बंबईके एक अंग्रेजी पत्रमें विज्ञापन छपा था :—
'अमेरिकाके विख्यात साइकालोजिस्ट तथा लेखन विशेषज्ञ, प्रो० बूमरैंग ताज होटलमें ठहरे हैं। आप अपने लेखनका नमूना भेजिये वह आपके चरित्रका विश्लेषण भेज देंगे। केवल प्रचारकी दृष्टिसे पाँच रूपये शुल्क रखा है। यह डाकव्यय, टाइप इत्यादिका व्यय मात्र है। लेखन अंग्रेजीमें होना चाहिये।'

मनुष्य अपने सम्बन्धमें स्वयं अच्छी तरह जानते हुए भी दूसरों-से जानना चाहता है। और दूसरोंके मुखसे सुनना चाहता है। शिकायत नहीं, प्रशंसा सुनना चाहता है। यह

भी विशेषता है। दूसरोंसे अपनी तारीफ सुननेमें जो आनन्द आता है वह स्वर्ग पानेमें भी होगा इसमें संदेह है। यदि ऐसा न होता तो भगवानके लिये भी स्तोत्र न बनते। पाँच रुपये कम नहीं होते। पाँच रुपयेमें पति-पत्नी एक शो देख सकते हैं, एक टिन बिसकुट आ सकता है, और कई दिनोंतक चायपान हो सकता है। यदि कोई इस संसारसे दूसरे संसारकी यात्रा सोचता है कि वैतरणी पार करनेमें अधिक कष्टकी आशंका है तो गोदान भी इतनेमें करके वैतरणीकी तरङ्गोंसे पहलेसे ही अपनी रक्षा रिजर्व करा सकता है। फिर भी अपने सम्बन्धमें जाननेकी इच्छा शिशुके हठके समान प्रबल थी। पाँच रुपयेका पोस्टल आर्डर मँगाया। उस समय ताजा लिखना ठीक नहीं समझा। सम्भव है इस ज्ञानसे कि चरित्र निरीक्षणके लिये लिख रहा हूँ लेखनमें कुछ विशेषता आ जाय, मैंने अपने एक पुराने लेखमेंसे दस पंक्तियाँ कैंचीसे काट लीं। उसी कागजको पोस्टल आर्डरके साथ भेज दिया। अपना नाम लिखना मैंने उचित न समझा। जैसे गदहा अपने खुरसे अपनी पीठ नहीं खुजला सकता वैसे ही साधारण मनुष्य अपनी आत्माका स्पर्श नहीं कर सकता। इसलिये 'के' लिख कर अपने घरका पता लिख दिया। पाँचवें दिन एक बड़ा, चौकोर लिफाफा पहुँचा। एक पत्र था तथा दो पृष्ठोंमें मेरा चरित्र लिखा था। पत्रमें लिखा था—आपने जो लेख भेजा है उससे आपके चरित्रकी मुख्य-मुख्य बातें भेज रहा हूँ। समयाभाव तथा कार्याधिक्यसे अधिक नहीं लिख सकता। इतने पत्र नित्य आ रहे हैं कि केवल गिननेके लिये एक महिला नित्य छ घण्टे काम कर रहीं हैं। सबका उत्तर देना और गेटवे आफ इंडियापर खड़े होकर लहरें गिनना बराबर है। किन्तु जब लोकसेवा अपने दुर्बल कंधों पर लिया है तब कुछ करना ही होगा। आपके चरित्रमें मुझे विशेष रुचि हो गयी है। इसलियेमैं चाहता हूँ कि आपके चरित्रका विशेष अध्ययन करूँ। समय तो बहुत लगेगा

किन्तु यदि आप पच्चीस रुपये भेज दें तो मैं ब्योरेवार लिख दूंगा। दुसरोंसे पचास रुपये लेता हूँ।

पत्र पढ़नेपर मुझे ऐसा जान पड़ा कि इनसे मेरा पुराना परिचय है। परिचय ही नहीं घनिष्ट सम्बन्ध है। सम्भव है इससे पहले जन्ममें मेरी इनकी रिश्तेदारी भी रही हो। मेरे बारेमें इतनी अधिक रुचि केवल मैंने अपनी पत्नीमें ही देखी। मेरे बारेमें किसको ऐसी रुचि हो सकती है कि मेरे लिये पचाससे पच्चीस रुपये अपनी फीससे कम कर दें। अपनी स्त्रीसे इतना घनिष्ट सम्बन्ध होता है किन्तु वह भी अपनी साड़ीके लिए आधा दाम कमी नहीं लेती। और किसी बंकका मैंने आपका ससुर ही क्यों न हो करज पर नौ रुपया सैकड़ा ही सूद लेगा, साढ़े चार नहीं। प्रोफेसर बूमरैंगसे न जाने कौन आत्मीयता थी कि इन्होंने इतनी अयाचित कृपा मुझपर की। इसके बाद मैंने अपना चरित्र पढ़ना आरम्भ किया। दो टाइप किये छोटे-छोटे पृष्ठोंमें वह था। छपाई बहुत सुन्दर थी। बैंगनी रोशनाईमें सुन्दर अक्षरोंमें वह छापा गया था। छपाई ऐसी थी कि मन न हो तब भी पढ़नेका लालच होता। उसमें जो लिखा था उसका महत्वका अंश यह है।

"आपमें बेहद प्रतिभा है। यदि थोड़ा परिश्रम आप करदें तो आपको वही प्रतिष्ठा प्राप्त हो सकती है जो आपके इतिहासके प्रसिद्ध जनरल हनूमानको मिली थी। आप यदि कुछ किफायतसे काम लें तो आपके लिये राकफेलर या फोर्ड होना कोई बड़ी बात नहीं है। आप बुद्धिमान व्यक्ति जान पड़ते हैं। यदि आप समय निकालकर पढ़ें तो आपका ज्ञानका भण्डार बहुत बढ़ जानेकी सम्भावना है।

आपके मनमें बहुत ऊँचा उठनेकी अभिलाषा है। कभी-कभी आप सोचते हैं जहाँ हूँ वहीं क्यों हूँ। आगे क्यों नहीं बढ़ी। किंतु आप इसके लिये प्रयत्न नहींकर रहे हैं। आप प्रयत्न कीजिये। आप

अवश्य ही महान होंगे। ऐसी तरकीब बतायी जा सकती है जिससे आपकी इच्छा पूरी हो। इसके लिये आप मुझसे पत्र-व्यवहार करें। निश्चय ही आपको सफलता मिलेगी। ऐसा जान पड़ता है कि आपकी इच्छा है कि मेरा नाम अखबारोंमें छपा करे। ऐसी इच्छा बहुत अच्छी होती है। महान व्यक्तियोंका यह लक्षण है। इससे पता चलता है आपमें महान बननेकी उत्कंठा है। उसे पल्लवित करनेकी आवश्यकता है। इसमें आप किस प्रकार सफल हो सकते हैं यदि आप चाहेंगे तो बता दूँगा। पत्र लिखिये।

आपके अक्षरोंमें जो घुंडियां हैं उनका मुँह बंद है। यह स्पष्ट इस बातका प्रमाण है कि तिजोरियोंमें आपके पास धन होना चाहिए। मुझे पता नहीं बंकमें आपका कितना जमा है अथवा कितने बंकोंमें आपका खाता है। किंतु यदि लाख रुपयेसे कम है तो शीघ्र ही वह संख्या हो सकती है यदि मेरे बताये ढंगसे काम लें। मैं अभी इसके ब्योरेमें नहीं गया। आप चाहेंगे तो मैं आपको बता सकूँगा कि कितने दिनोंमें आप लखपती बन सकेंगे जैसे जूनमें बादल आते हैं, मंडराते हैं, पानी बरसने वाला ही होता है उसी प्रकार रूपया आपके चारों ओर घिर रहा है। बरसने वाला ही है।

और जो आपके अक्षरोंका घुमाव है वह तो बहुत ही मधुर है। उसकी गोलाई शरीरके अवयवोंकी गोलाईका प्रतीक है। और ईसमें बीचमें बहुत महीन रेखा है जो कटिकी क्षीणताका प्रतिबिंब है। आपके जीवनमें बहुत सुन्दर प्रेमकी पात्री आनेवाली है जिसकी कटि क्षीण होगी। यदि आप चाहें तो आपको अक्षरोंकी बनावटका सूक्ष्म अध्ययन करके उस रमणीका ठीक-ठीक रूप वर्णन किया जा सकता है। उसके लिये समय अपेक्षित हैं। ब्योरेवार अध्ययनसे ही वह संभव है।

आपका लेख आर से आरंभ होता है। जिन स्त्रियोंका नाम आरसे

आरंभ होता है उनकी ओरसे आपके लिये स्नेहका स्रोत बढ़ेगा। जैसे रोज, रोमोला, रोज़ाबेल, रजनी, रेणु, राधा, रोशनारा, रजिया आदि। आपके लेखके अन्तमें एच अक्षर है। एच से जिनके नाम आरंभ हों उनसे आप सावधान रहियेगा। जैसे हेमन्त कुमारी, हविषादेवी, हेमवती, हनुमान, हेरंब, हसरत, हाफिज आदि। होटल, हलवा, हास्य तथा हज्जामसे दूर रहनेकी चेष्टा कीजियेगा। इसपर अभी विशेष अध्ययन नहीं किया गया है। आपके पत्र लिखने पर नामोंकी पूरी सूची भेज सकूँगा।

आपका लेख हरी रोशनाईमें है। आप बहुधा इसी रोशनाईका प्रयोग करते हैं। इसमें जो मनोवैज्ञानिक रहस्य नीहित है वह बड़े-बड़े ज्योतिषी भी नहीं समझ सकते। फ्रायडने अपनी एक पुस्तकमें इस मनोवृत्तिवालोंके मनका विश्लेषण किया है। आप यदि स्मरण कर सकें तो कीजिये। जब आप तीन सालके थे तब आपको घास खानेकी आदत हो गयी थी। एक दिन आपके पिता अथवा माताने देख लिया था और आपको पीटा था। इसलिये आपको हरी वस्तुओंसे चिढ़ हो गयी। आपकी दबी वासना अब हरी रोशनाईके रूपमें निकल रही है। आप इसका ध्यान रखें कि जहाँ हरी वस्तुएँ अधिक हों वहाँ न जायँ नहीं तो पागल हो जानेकी आशंका है। बागमें न जाइये और पेड़ोंकी ओर न देखिये। इस थोड़े विवरणमें अधिक नहीं बता सकता।

मुझे एशिया, यूरोप, अमेरिका, अफ्रिका, आस्ट्रेलियाके सहस्रों पुरुष तथा स्त्रियोंका लेख देखनेको अवसर मिला है किन्तु आपकी लिखावटमें कुछ विशेषताएँ हैं जो कम लोगोंमें मिलती हैं। आपके अक्षरोंकी चौड़ाई लम्बाईसे अधिक है। यह विशालताका द्योतक है। आपका शरीर चौड़ा हो सकता है, माथा चौड़ा हो सकता है और हृदय भी। इस प्रकारकी लिखावट चौदहवें लूई, थूरो, पीटर महान

तथा अबुल फ़ज़लमें देखी गयी है। इन लोगोंको महान माननेमें किसीको संदेह नहीं हो सकता। आप इन महानोंसे भी बढ़ जाय तो आश्चर्य नहीं। किन्तु पूरे अध्ययन बिना कुछ कहा नहीं जा सकता। लिखावटकी पंक्तियाँ ऊपर नीचे होनेके कारण यह गुण लोप भी हो सकता है। आपके महान गुण समय-समय पर ज्वारभाटाके समान अधिक और कम होते रहेंगे।

एक बात जो सबसे महत्त्वपूर्ण आपके चरित्रमें जान पड़ती है वह है आपका हृदय। आपकी लिखावटकी रोशनाई गाढ़ी है इससे प्रतीत होता है आपमें रोमांटिकता बहुत है। आपको फूल अच्छे लगते होंगे। आपको सुंदर चेहरे भले लगते होंगे, आपको शरबत अच्छा लगता होगा। सूतीसे अधिक आपको रेशमी कपड़े अच्छे लगते होंगे। चायसे तबीयत ऊब जाती होगी तब आप काफी पीते होंगे। आलूकी तरकारी आपको अच्छी लगती होगी। आलू रोमांटिकोंकी तरकारी है। इस समय बहुत ब्योरेमें नहीं जा सकता। उसके लिए अध्ययनकी आवश्यकता है। यदि आप कहें और हमारे नियमके अनुसार बीस रुपये पाँच आने भेज दें तो यह भी बताया जा सकता है कि आपका किससे-किससे प्रेम हुआ है और यह भी कि आगे किससे-किससे होगा। उसकी आँखे कैसी होंगी, मृगनयनी कि गजनयनी। वह कितने मूल्यकी साड़ियाँ पसन्द करेगी, सप्ताहमें कितनी बार सिनेमा देखेगी, जलपान स्वयं बनाएगी कि आपको किसी रेसतरांकी शरण लेनी होगी।

आशा है इन सब बातोंकी जानकारी आप अवश्य प्राप्त करेंगे जिससे इस लोकमें आपका जीवन सानन्द, सोल्लास तथा समोद बीत सके।"

ज़बर्दस्तका ठेंगा सिर पर

बात तो सचमुच यह है कि आप कुछ भी हों—बुद्धिमें अफ़ला-तून हों, विद्यामें बृहस्पति हों, धनमें कुबेर हों—आपसे जो बलवान् है, शक्तिशाली है, अधिक ज़ोर जिसके पास है, उसीकी बात माननी पड़ेगी। वही ठीक है, वही सच्चा है, वही भला आदमी है। आप सबेरे उठते हैं, कुछ सोचते-सोचते मेज़ पर हाथ फटकारते हैं और दवात गिर पड़ती है। किन्तु आप नौकरको डाँट देते हैं कि सावधानीसे दवात नहीं रक्खी थी। दवात रखनेकी क्या यह जगह है! वहाँ कोने पर दाहिनी ओर रखनी चाहिए, जिससे हाथ हटाने, बढ़ानेसे न गिरे। यदि

मास्टर साहबने पढ़ाया नहीं है और विद्यार्थी किसी प्रश्नका उत्तर नहीं दे सकता, तो मास्टर साहबका दोष नहीं हो सकता। लड़का पढ़ता नहीं, खेलवाड़ी है, इधर-उधर घूमता है। और, विद्यार्थीको सुनना ही पड़ेगा। ये सब विशेषण जो भाषा और व्याकरणने बना रक्खे हैं, इसीलिए ही हैं कि ज़बर्दस्त लोग उनका प्रयोग अपनेसे कम शक्तिवालोंके लिए करें।

उपर्युक्त कहावतमें विशेषता है जो सबके ध्यानमें संभवतः एकाएक नहीं आती। ठेंगा हाथके अंगूठेको कहते हैं। यह छोटी-सी चीज़ होती है। यह छोटी-सी चीज़ भी यदि किसी शक्तिशालीकी होती है तो वह दूसरेके सिर-जैसी बड़ी वस्तुको भी दबा देती है। सिर शरीरका सबसे ऊँचा भाग है। ज़बर्जदस्तका अर्थ है—ज़ोरदार हाथ। ज़ोरदार हाथका अँगूठा ही अकेला दबा देनेके लिए काफ़ी होता है। पाँचों उँगली और पूरे हाथकी तो बात क्या! उसकी तो आवश्यकता भी नहीं पड़ती।

इसका बहुत सुन्दर उदाहरण आपके सम्मुख रखना चाहता हूँ। भारतमें अंग्रेज़ोंके शासनकालमें एक अंग्रेज़ कमिश्नर थे। उन्हें शिकारका बहुत शौक था। कमिश्नरोंको यों भी काम कम होता था और वे तो अधिकांश दौरा किया करते थे, जिससे शिकार खेलनेका अवसर मिले। उन दिनों मिरज़ापुर ज़िलेके जंगलोंमें शेर अधिक थे। मचान बनाकर शेरका शिकार कमिश्नर साहब खेला करते थे। कमिश्नर महोदय मिरज़ापुर दौरे पर गए। कमिश्नरने कलक्टरको लिखा, कलक्टरने डिपुटी कलक्टरको लिखा, डिपुटी कलक्टरने तहसीलदारको, तहसीलदारने नायब-तहसीलदारको, उन्होंने कानूनगोको, कानूनगोने पटवारीको और पटवारीने चपरासीको आज्ञा दी कि कमिश्नर साहब शेरका शिकार खेलने जा रहे हैं। प्रबन्धका सिलसिला बना। चपरासीने भैंस

खरीदी। मचान भी बन गया। वह इस ढँगसे बाँधा गया कि पेड़ोंमें छिप गया। कहींसे दिखाई नहीं देता था। सबेरे कमिश्नर साहब भी पहुँच गए। उसी समय चपरासीसे पटवारी और पटवारीसे नायब-तहसीलदार और इसी प्रकार एक सीढ़ीसे दूसरी सीढ़ी होते-होते डिपुटी साहबके पास समाचार पहुँचा कि इधर उधर हाँक कर देख लिया गया, लेकिन इस जंगलमें इस समय शेर नहीं है। डिपुटी साहबने जब यह सुना तो उनकी कपाल-क्रिया हो गई। लगे सिर धुनने। तहसीलदारने कहा —"अब क्या होगा ?" मैंने सोचा था कि इस शिकारके कारण तरक्की होगी। विलायततक नाम होगा। अब तो कहींके न रहे ! कलक्टर साहब कहेंगे नालायक़ है। यदि शेर नहीं रहा तो बताया क्यों नहीं। भैंस खरीदी जा चुकी थी। अन्तमें उन्होंने यही निश्चय कर लिया कि इसका पता न दिया जाए। शाम होते ही कार पर कमिश्नर और कलक्टर पहुँचे। कमिश्नरको मचानपर पहुँचाकर सब लोग चले आए। कमिश्नर साहब थोड़ी-थोड़ी देरतक थरमसमें से चाय निकाल कर पीते रहे। डिपुटी साहबने चपरासीको सिखा दिया था कि दो-तीन बजे रातको भैंस खोलकर ले जाना। कमिश्नर साहब चायके बीच-बीच ब्राण्डी भी थोड़ी ले लेते थे जिससे दुर्बलताका अनुभव न हो। दो-तीन बजेके लगभग शेर तो न आया, नींद आ गई। इधर चपरासी भैंस खोलकर लोप हो गया।

सबेरे कमिश्नर साहबकी नींद खुली। भैंस ग़ायब ! शेरका पता नहीं !! उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ कि क्या बात है। शेर नहीं तो भैंस क्या हो गई ? वह आया और गरजा नहीं ? शेर चालाक होते हैं, इसी-लिए शायद न गरजा हो। तो भैंस तो डकराती ! कमिश्नरकी खोपड़ी नई उलटी हाँडीकी भाँति चिकनी हो चुकी थी इसी देशमें। पचीसों शेरोंकी खालें उनकी बैठकमें थीं। ऐसा कभी हुआ नहीं। बँगले

घर आकर उन्होंने इसका पता लगानेकी आज्ञा दी कि क्या बात है। कलक्टरने डिपुटीसे कहा। दो घंटे बाद डिपुटी साहब कमिश्नरके सम्मुख उपस्थित हुए और बोले—"हजूर पता लग गया। यह सब दोष उस चपरासीका है, जिसे भैंस खरीदनेकी आज्ञा दी गयी थी। वह कहींसे गूँगी भैंस खरीद लाया था। शेर आया भी, भैंसको उठा भी ले गया, किन्तु वह डकार न सकी।" कमिश्नर साहबको विश्वास हो गया और उन्होंने कलक्टरको चपरासी बरखास्त करनेकी आज्ञा दे दी। बेचारा चपरासी निकाल दिया गया।

एक-दो नहीं, सैकड़ों उदाहरण दिए जा सकते हैं जिनसे यह पता लग सकता है कि बेचारे दुर्बल पर ही सब कुछ आ बनती है, चाहे उसकी भूल हो या न हो। और जिनके पास अधिकार है, वह कभी भूल नहीं करता। उससे कभी ग़लती नहीं होती, वह सबदोष से परे होता है। इसकी शृङ्खला भी खूब है। हम पशुओंसे भी इसी प्रकार व्यवहार करते हैं। गाड़ीवान लाद देता है स्वयं इतता बोझ, और जब बैल नहीं खींच सकता तो मारता है बैलको। यद्यपि दोष बैलका नहीं होता।

यदि श्रीमती जी पचास रुपयेकी साड़ी खरीद लाती हैं तो विशेष चिन्ता नहीं, किन्तु यदि आप साधारण सिगरेट छोड़ बहुत क़ीमती सिगरेटका डिब्बा मोल लाते हैं तो आप फ़जूल खर्च हैं, घरकी परवाह नहीं करते। आप शान्त भावसे, उदास मुँहसे, सन्तोषी बनकर सुन लेते हैं, क्योंकि उधर शक्ति प्रबल है।

पृथ्वी ही नहीं, हम सबसे जबर्दस्त ईश्वर है। उसीकी आज्ञासे सब कुछ होता है, किन्तु फल हमें भोगना पड़ता है। पड़ोसमें रहकर भी ईश्वर कभी नरक नहीं जाता। शायद निरीक्षणके लिए भी नहीं जाना पड़ता है उसे। और हम कोई काम उसकी आज्ञा, उसकी मनशाके

बिनाकर नहीं सकते। बहुत सम्भव है यह परम्परा वहींसे चली हो और मनुष्यने उसे वहींसे सीखा हो।

पुरानी कहानी भेड़िए और भेड़के बच्चेकी भी विख्यात है जो नहरके किनारे बैठे थे। भेड़िएके अनुसार पानी गन्दा किया भेड़ने, या उसके पिताने। किसी भी अवस्थामें दोषी वही भेड़का बच्चा था, भेड़िया नहीं। और भेड़िया हो भी नहीं सकता था, क्योंकि शक्ति उसके पास थी, भेड़के पास नहीं।

अब लोग इसे बुरा ही समझें, इसके विरुद्ध आवाज़ उठाएँ, किन्तु यह संसारका नियम हो गया है। जैसे व्यापारकी सफलताके लिए झूठ बोलना आवश्यक है, जैसे घीकी कमीके कारण वनस्पतिका प्रसार आवश्यक है, विज्ञापन लेनेके लिए समाचारपत्रोंकी संख्या बढ़ा-चढ़ाकर बताना उचित है, परीक्षा पास करनेके लिए नक़ल करना नैतिकतासे बाहर नहीं है, वैसे ही दुर्बलपर सबलका अधिकार, इसका शासन, उसका प्रशासन आवश्यक ही नहीं नैतिक और धर्मपूर्ण भी है। जीवनका यही नियम है, और है नहींतो होना चाहिए। यदि कलक्टर साहबकी ग़लतीपर चपरासीको दण्ड न देकर कलक्टरको दण्ड दे दिया गयातो संसार चल सकेगा? एकदम गति रुक जाएगी और नक्षत्रोंमें हलचल हो जाएगी। प्रलय समयसे पहले होने लगेगा। कबीरदासने तो नदीको नावके बीच डुबोया था। यहाँतो छोटेको और निर्बलको सब बातोंका उत्तरदायी बनाना आवश्यक है। निर्बल और दुर्बल ज़िम्मेदारी माँगते भी हैं। ऐसी अवस्थामें उन्हें सभी बातोंका ज़िम्मेदार बनाना भी ठीक है। उन्हें केवल लाभदायक ज़िम्मेदारी ही नहीं मिल सकती। फलमें केवल गूदा ही नहीं होता, छिलका भी होता है, और सुना है छिलकेमें अधिक लाभ हैं। इसलिए यदि शक्तिशाली दुर्बल व्यक्तिपर या समुदायके मत्थे दोष और अपराध मढ़ता है तो घबरानेकी बात नहीं है। इसे

नवयुगका वरदान, नवजीवनका सिद्धान्त, नये संसारका सन्देश समझना चाहिए।

एक बात और। इसमें रस भी है। आपके नौकरने इधर-उधर घड़ी रखदी और आप उसपर बिगड़े तो कोई विशेषता इसमें नहीं है। नवीनता और स्वाद तो इसमें है कि घड़ी आप लिए बाथरूममें चले गए और वहीं छोड़ आए और बिगड़ रहे हैं नौकरपर। यह बात लीक से अलग, नई राहपर है। आज जब कविता नई बन रही है, खान-पान नया हो रहा है तब हमें व्यवहारमें भी ऐसा ही होना चाहिए जिसमें कुछ विक्षोभ, कुछ संघर्ष, कुछ जीवनका संचार हो।

इस प्रकारका व्यवहार खल जाता है, इसमें सन्देह नहीं। हम दोषी नहीं हैं, और दोष हमारे मत्थे मढ़ दिया जाए तो पीड़ा होती है। और पीड़ा ऐसी कि आप कराह नहीं सकते। किन्तु इसकी विशेषता यह है कि इसकी श्रृंखला बनी हुई है, चेन लगी है। अपनेसे छोटेको अपने दोषका सभी ज़िम्मेदार बनाते हैं और वह दण्ड भोगता है। हमसे जो ज़बर्दस्त है, वह हमारे ऊपर रोब गाँठता है और हम वही काम अपनेसे दुर्बलके प्रति करते हैं। यह जीवनकी विचित्र विडम्बना है। घरसे लेकर दफ्तर तक और संसारके अनेक विभागोंमें यही कार्य चलता रहता है। जैसे, गुलाबके साथ काँटा आवश्यक है, तरकारी और चटनीमें मिर्च आवश्यक है, पुस्तककी आलमारीमें दीमक आवश्यक है, और आमदनीपर इनकम टैक्स आवश्यक है, उसी प्रकार यह ज़बर्दस्तोंका अत्याचार, अनाचार, टेंगाचार, जो कुछ कहिए, आवश्यक हो गया है। ठीक वैसे ही जैसे कैंसर और क्षय और रक्तचापके रोग हमारे जीवनके अंग बन गए हैं। रोगोंके मिटानेके लिए तो डॉक्टर लोग बड़ी-बड़ी प्रयोगशालाओंमें खोज भी कर रहे हैं, किन्तु इसके लिए खोज भी नहीं

हो रही है। मनोविज्ञानशालाओंमें भी यह जाननेके लिए कि ऐसी मनोवृत्ति क्यों होती है, कुछ कार्य नहीं हो रहा है।

यह भी आवश्यक नहीं है कि किसीका कोई दोष हो, या किसीने कोई अपराध किया हो तभी जबर्दस्तका ठेंगा उसके ऊपर हो। अना-यास भी जबर्दस्तकी बात माननी पड़ती है। अध्यापक गलत बात बतादे तब भी विद्यार्थीको मानना है; सेनापति अनुचित निर्देश करे तब भी सेनाको मानना है; अफसर गड़बड़ आदेश करे तब भी कर्मचा-रियोंको मानना ही है, क्योंकि यह सब उनकी आज्ञा है जिनके पास शक्ति है। इसलिए जबर्दस्तका ठेंगा जीवनका उतना ही अंग बन गया है जितना कलाका सत्य, शिव और सुन्दर।